TEXT FLY WITHIN THE BOOK ONLY

TIGHT BINGING BOOK

UNIVERSAL LIBRARY
OU_178931
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 891.432 Na Accession No. G.H. 2351

Author अलोन्द्र ।

Title नागरिक कहानियाँ । 1919

This book should be returned on or before the date last marked below.

भारतीय ग्रन्थमाला; संख्या ११.

नागरिक कहानियाँ

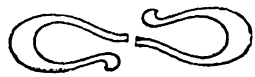

लेखक

प्रोफ़ेसर सत्येन्द्र एम. ए.,

चम्पा अग्रवाल इण्टर कालिज, मथुरा

प्रकाशक
भगवानदास केला,
व्यवस्थापक
भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन

प्रथम संस्करण १२५० प्रतियाँ	सन् १९३९ ई०	मूल्य दस आने

मुद्रक
त्रिभुवननाथ शर्मा,
जमुना प्रिन्टिंग वर्क्स
मथुरा

अपनी बात

राजनैतिक और आर्थिक साहित्य प्रकाशित करने वाली भारतीय ग्रन्थमाला में यह कहानियों की पुस्तक क्यों ? भारतीय शासन, निर्वाचन पद्धति, भारतीय राजस्व और भारतीय अर्थशास्त्र आदि के साथ इस कृति क्या मेल ? यदि ऐसे प्रश्न का उत्तर देना हो, तो निवेदन है कि हमारा उद्देश्य नागरिकता के भावों का प्रचार करना है; हम चाहते हैं कि प्रत्येक गांव और नगर में, हर एक जाति तथा सम्प्रदाय के छोटे-बड़े सब व्यक्ति नागरिक धर्म का पालन करें। हमारे साहित्य-कार्य का प्रधान लक्ष्य नागरिक शिक्षा रहा है, यह जिस प्रकार, जिस रीति से भी हो सके, अभिनन्दनीय है; उपन्यास, नाटक, कहानी, सम्भाषण ('डायलॉग'), सिनेमा, रेडियो आदि द्वारा जो संस्थाएँ नागरिक शिक्षा का कार्य सम्पादन करती हैं, उन से उस अंश तक हमारी सहानुभूति है, और होनी ही चाहिए।

कुछ समय से मेरे मन में यह अभिलाषा थी कि निर्वाचन, मताधिकार, ग्राम-सुधार अस्पृश्यता-निवारण, साक्षरता-प्रचार आदि नागरिक समस्याओं पर विचार करने के लिए जिन पाठकों को हमारी अन्य पुस्तकें समुचित रूप से आकर्षित नहीं करतीं, उन की रुचि का ध्यान रखते हुए, उन के लिए यह विषय कहानियों द्वारा उपस्थित किया जाय। संयोग से मेरे परिमित क्षेत्र में भी ऐसे मित्रों का अभाव नहीं था जो कहानी-लेखक के नाते काफ़ी प्रसिद्ध हैं। मैंने पहले एक अन्य मित्र से अपनी इच्छा प्रकट की। उन्हों ने मेरे विचार को क़द्र की, तथापि वे

इस को क्रियान्वित न कर सके। फिर मैंने सुहृद्वर श्री० सत्येन्द्र जी से याचना की। आपने बहुत कुछ व्यस्त होते हुए भी मेरी बात स्वीकार कर ली, और उसी के फल-स्वरूप आज पाठकों की सेवा में यह कृति उपस्थित करने का सुअवसर आया।

श्री० सत्येन्द्र जी कुछ पाठकों के लिए अपरिचित होंगे, और, आत्म-विज्ञप्ति के इस युग में उनका ऐसा होना आश्चर्यजनक या अस्वाभाविक भी नहीं। तथापि जानने वाले यह भली भांति जानते हैं कि आपने इस समय तक उपन्यास, नाटक, साहित्य, इतिहास, समालोचना आदि विषयों पर फुटकर तथा पुस्तक रूप में कितना लिखा; हिन्दी लेकर बी. ए., एम. ए., की परिक्षाओं में बैठने वालों की कितनी सहायता की; मथुरा में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के साहित्य-रत्न तैयार करने में कितना योग दिया, और कितने भावी साहित्यकों का पथ-प्रदर्शन किया। मुझे डर है कि कुछ सज्जनों की दृष्टि में यह पुस्तक आपकी योग्यता की यथेष्ट परिचायक न हो। कहानी-कला के सम्बन्ध में मुझे कुछ कहने का अधिकार नहीं है। तथापि सम्भवतः मेरा यह निवेदन क्षम्य होगा कि किसी उद्देश्य विशेष को लेकर कार्य करने में, कलाकार को अपनी कला प्रदर्शित करने का यथेष्ट क्षेत्र नहीं रहता; उस पर कुछ बन्धन आ जाता है; उसकी कल्पना स्वतन्त्र विचरण नहीं कर पाती। मैं श्री० सत्येन्द्र जी से केवल सुन्दर या मनोरंजक कहानियां लिखाना नहीं चाहता था। यद्यपि अच्छी कहानियां भी साहित्य में अपना यथेष्ट महत्व रखती हैं, पर भारतीय ग्रन्थमाला को अभी अपने विशेष क्षेत्र के कार्य से ही छुटकारा नहीं कि वह साहित्य के इस अंग

की वृद्धि में भी भाग ले। अस्तु, मैं तो यही चाहता था कि पाठकों के लिए नागरिकता के ही ज्ञान की सामग्री दी जाय; हां, वह हो कहानियों के रूप में। मेरी इस इच्छा की पूर्ति करने में अच्छे अच्छे लेखकों को भी कुछ झिझक सी थी। श्री० सत्येन्द्र जी ने इस इच्छा की पूर्ति की। अतः आपकी कृति से मुझे तो प्रसन्नता है, सन्तोष है।

यह पुस्तक पाठकों के लिये तो अपने विशेष ढंग की सामग्री उपस्थित करती ही है। साथ ही यह योग्य कहानी-लेखकों के लिए एक प्रकार का निमन्त्रण है कि वे इस ओर भी अपनी योग्यता से लाभ पहुँचावें। यदि इस रचना ने नागरिकता के भावों की वृद्धि में सहायता दी, और यदि अन्य लेखकों तथा प्रकाशकों द्वारा भी इस तरह की कृतियां प्रस्तुत की गयीं, तो हमें अत्यन्त हर्ष होगा।

श्री० विद्याभूषण जी एम. ए., साहित्य-रत्न, मथुरा, ने इस रचना पर एक दृष्टि डालते हुए कुछ विचार-पूर्ण पंक्तियां लिखने की कृपा की है, तदर्थ हम आपके कृतज्ञ हैं।

विनीत

भगवानदास केला

एक दृष्टि—

इन कहानियों को मैं ध्यान से देख गया हूँ। कहानी में लोकोत्तर आनन्द पाने की अभिलाषा रखते हुए भी मुझे इनमें एक विशेष रस मिला। "कला कला के लिये" मत को मानने वाला पाठक शायद इन कहानियों में "टेकनीक" का अभाव देखे, परन्तु इस प्रकार देखना पुस्तक और लेखक दोनों के प्रति अन्याय होगा। "नागरिक कहानियाँ" एक विशेष उद्देश्य को लेकर लिखी गई हैं। मेरा विचार है कि यदि लेखक के उद्देश्य को स्वीकार कर लिया जाय तो, यह पुस्तक हिन्दी में अभी तक अद्वितीय है। अपने क्षेत्र में, यह एक अभूतपूर्व रचना है। किसी उद्देश्य को साथ रखकर लिखी हुई कहानियों में यह साहित्यिक-सौन्दर्य मैंने और कहीं नहीं देखा।

भारत में कहानी का उद्गम एक विशेष उद्देश्य को लेकर ही हुआ। उपनिषद् की कथाओं में हमें गम्भीर दार्शनिक तत्व समझाये गये हैं। पञ्चतन्त्र और हितोपदेश की कहानियों का उद्देश्य मनोरंजन ही नहीं था, उनकी सर्वप्रियता का एकमात्र कारण है—उनमें धार्मिक तथा नैतिक बातों को अपने पूरे हल्केपन के साथ रख देने की क्षमता। और, आज की मनोवैज्ञानिक कहानी ही क्या एक उद्देश्य को लेकर नहीं चलती? विचारपूर्ण परिस्थितियों की सहायता से मनुष्य के अचेतन मस्तिष्क का चित्र खींच देना ही वर्तमान कहानी का उद्देश्य है।

" नागरिक कहानियाँ " पढ़ते समय यही कुछ भाव मेरे मन में उठते हैं। भारतवर्ष की वर्तमान परिस्थितियों में नागरिकता को धर्म मानने की विशेष आवश्यकता है। नागरिक जीवन के विभिन्न पहलुओं और समस्याओं को सीधे सरल रूप में अल्प-शिक्षित जनता के सामने रख देना ही इन कहानियों का उद्देश्य है। इन कहानियों में जो बात कही गई है, वह लेखक के सामने, स्पष्ट है। साथ ही, सोद्देश्य लिखी हुई होने पर भी इनमें अनुभूति का स्पर्श और प्रतिभा की चमक है। प्रगतिशील भारतीय राष्ट्र के लिए यह कहानियाँ नवीन जीवन प्रदान करेंगी और इनसे राष्ट्र-भाषा में एक नव निर्माण का शिलान्यास होगा—ऐसा मेरा विश्वास है।

विद्याभूषण अग्रवाल,
एम. ए., साहित्य-रत्न

जिनके

स्नेह-कल्पवृक्ष की वरद छाया में

मैंने 'मैं' कहलाने का अधिकार

पाया है, जीवन-ज्योति देखी है,

और मेरा जो कुछ है, वह सब भी

जिनके अतुल आशीर्वाद से ही है

उन्हीं

परम पूज्य, साधुमना,

पिता

मुंशी दुर्गाप्रसाद जी

के

देव-तुल्य चरणों

में

समर्पित

--सत्येन्द्र

विषय सूची

	कहानी	पृष्ठ
१.	उज्ज्वल प्रभात	१
२.	चुनाव की लड़ाई	७
३.	खण्डहर का उपदेश	२४
४.	मृत्यु पर विजय	४०
५.	देय का दान	५७
६.	हठ का अभिशाप	७३
७.	न्याय के लिए	८६
८.	मेले का मेल	९४
९.	मेरा चोर	११०
१०.	बिखरा स्वप्न	१२३
११.	स्वतन्त्रता का अर्थ	१३९

१

उज्ज्वल प्रभात

बहुत पुरानी बात है। एक दिन कुछ आदमियों का समूह बनों-बीहड़ों को, पहाड़ों-पर्वतों को, नदी--नालों को पार करता हुआ एक मैदान में आ बसा। उनके साथ कुछ जानवर थे। ये लोग कपड़े लत्ते पहनना नहीं जानते थे। सीप-घोंघों से बुरी भांति अपना शरीर सजाये हुए थे, वैसे शरीर पर छाल भी नहीं थी। ये लोग पेड़ों के नीचे ठहर गये। पेड़ फलों के थे। मैदान में घास फूंस भी उगा हुआ था। उनके पशु वहां रहकर मोटे ताज़े होने लगे। उनसे पैदावार बढ़ी। अब उन लोगों ने वहीं पड़ाव डाल दिया। पेड़ों से शाखाऐं काट काट कर अपने लिये

झोंपड़ियां बनाकर ये लोग उनमें रहने लगे। सभी लोग स्वतन्त्र, निर्भीक और बलवान् थे। किन्तु सुदास उन सबमें बलवान् था। बात यह थी कि वह दिमाग़ वाला आदमी था। वह सोचता था कि पशुओं की रखवाली कौन करे? इस लिये यह अपने पशुओं को दूसरे चरवाहों के गोल में मिला देता और आप मौज से किसी पेड़ पर चढ़कर मीठे मीठे फल खाता। चिड़ियों के चह-चहाने की नक़ल करता। कभी कोकिल के स्वर-सा अपना स्वर बनाकर राग अलापता। इस प्रकार दिन भर मौज करता। जब भूख लगती गायों को दुह कर चुपचाप पी जाता। बच्चों पर तो वह बहुत ही हावी होरहा था। वे उससे प्यार भी करते और डरते भी थे। वह दिन भर यों ही घूमता और शाम को आकर किसी भी आदमी से भोजन छीनकर खा जाता था। किसी को हिम्मत न थी कि उससे चूं भी करता। वह एक और नटखटपन करता। उसने अपने लिये कोई झोंपड़ी नहीं बनाई थी। उसके पास कोई सामान था ही नहीं। कुछ जानवर थे सो उन्हें भी दूसरों के गोल में मिलाकर बेफ़िक्र हो जाता था। अतः कोरा फाफानन्द था। तो गर्मी में तो रातें बड़े सुख से बीतती थीं किन्तु वर्षा और जाड़ों में मैदान में घास पर पड़कर सुख की नींद नहीं ली जा सकती थी। उन दिनों उसे नींद भी बहुत आती थी। झोंपड़ी बनाये कौन? वह यह करता कि किसी भी झोंपड़ी में घुस जाता और बरसात में या जाड़ों में वहां के रहने वालों को निकाल बाहर करता। यदि वे न निकलना चाहते तो लट्ठ तानकर

खड़ा हो जाता, और एक दो को मार भी डालता। सभी लोगों के रोंगटे खड़े हो जाते थे। वे दूसरों का मरना देखकर दुखी न होते थे, वरन् यह सोचकर कि कल यह इसी तरह हमारे ऊपर भी दौड़ेगा। किन्तु उस दुःख का कोई इलाज न था। सुदास का डर जैसे जैसे उस समुदाय में बढ़ता गया वैसे वैसे ही उसका नटखटपन भी बढ़ता गया। अब उसे अपने नटखटपन में आनन्द भी आने लगा था। उसने लड़ लड़ कर दूसरों के पशु छीन लिये। उनको उनके झोंपड़ों से निकाल कर उसमें अपने पशु बाँधता। उसे देख कर और भी बहुत से उसके साथी बन गये। वह जो हुकुम देता वे सब उसका पालन करते।

एक दिन यह झगड़ा बहुत ही बढ़ गया। सुदास जितना शैतान था भृगु उतना ही भोला। उस गिरोह के सब लोग उसे प्यार करते थे। वह सभी का काम करने को तैयार रहता था। उससे कभी किसी को दुःख नहीं पहुँचता था। सभी के सुख में उससे सहायता मिलती। किसी का भी बिगाड़ उसे भाता न था। उस दिन मान्धाता की गायें जंगल में भटक गई थीं तो भृगु ही अपना सब काम धाम छोड़ कर उन्हें ढूंढने जंगल में चक्कर लगाता फिरा था; और वह भी, उसने एक गाय को तो जान पर खेलकर बचाया था। गाय के खोजों को देखता देखता वह जंगल में घुस गया था। वहां उसने देखा कि एक शेर गाय पर झपटना ही चाहता है। उसने पत्थर के दो नोंकदार टुकड़े झटपट उठा लिये और ऐसा अचूक निशाना बांधकर पूरी ताक़त से उनको

फेंका कि उसकी मशाल सी आंखों में वे घुस गये। अन्धा शेर अन्दाज़ से कुछ उछला भी किन्तु दर्द से चीख़ कर आधी दूर पर कूदकर अपना सिर हिलाता भाग गया। यह बात सारे समूह में फैल गई; इसने भृगु की क़दर और बढ़ा दी।

वह बूढ़ों का सहारा था, बच्चों का सखा था, गृहस्थियों का हितैषी था; स्त्री-बच्चे, बड़े-बूढ़े सभी उसे चाहते थे। उस समूह का नायक भी उससे खुश था। तो एक दिन क्या हुआ कि सुदास की दृष्टि उसके घर पर पड़ गई। वह उसके मकान की ओर लपका। रास्ते में एक पड़ौसी के दो लड़के मिल गये। सुदास को समय काटने के लिये कुछ खिलौनों की ज़रूरत थी। वह मिट्टी आदि के खिलौनों को पसन्द नहीं करता था। अपने कठोर पञ्जों में एक एक हाथ से उसने उन बच्चों को पकड़ लिया। वे कैं कैं करते हुए उसके दोनों ओर किढ़रते चले। भृगु के मकान के पास पहुँचकर एक लात में दरवाज़ा तोड़कर वह दरवाज़े की चौखट पर बैठ गया। उन दोनों बच्चों के सिर लड़ा दिये, उनको रोता देख कर वह हँसने लगा। भृगु मकान में नहीं था। थोड़ी देर में वह वहाँ आया। उसने जो यह दृश्य देखा तो उसका .खून ठण्डा होगया। आज क्या होना है? वह सुदास के पास पहुँचा और कहा, "यह क्या कर रहे हो? बच्चों को छोड़ो और कहीं अन्यत्र जाओ।" भृगु ने यह ज़रा कड़कड़ाती आवाज़ में कहा था। जो कभी अपनी मनकी मौज में बाधा का आदी नहीं हो उसे क्रोध आ ही जाता है। आज ज़रासी खरी आवाज़ ने सुदास

के कानों में प्रवेश नहीं किया था। वह चौंका। बच्चों का सिर लड़ा लड़ाकर उनके चीखने और रोने और हाथ पैर फैंकने के बेबसी के व्यापार ने उसके बर्बर उल्लास को इस समय पूरी तरह उभार रक्खा था। उल्लास तो क्रोध में परिवर्तित होगया। बर्बरता बनी हुई थी। उसने मुट्ठियाँ ढीली करके बच्चों की गरदन तो छोड़ दी, भड़भड़ा कर दोनों हाथ बढ़ाकर भृगु की गरदन पर मारे। भृगु बेहोश होकर गिर पड़ा। सुदास का पाशविक व्यापार और भी बढ़ गया। वह अंकुश जानता ही न था। उसने भृगु की झोंपड़ी नोंच फैंकी। पागलों की भांति उसकी वस्तुएं इधर उधर फैंक दीं। झोंपड़ियों में से और लोग निकल कर बाहर झाँकने लगे, भृगु की उस दारुण व्यथा और अवस्था को देखकर वे रो पड़े। उसका प्यारा झोंपड़ा उन्होंने अपनी आंखों से उजड़ता देखा। उन्होंने देखा कि सुदास इतना भारी काम करके भी इठलाता हुआ धीरे धीरे उनकी आंखों के सामने से जंगल में ओझल होगया। भृगु की दुरवस्था की खबर सारे समूह में फैल गई। बालक-बच्चे, स्त्री-पुरुष सब उसे देखने जुड़ आये। और उस दिन पहली बार उन लोगों ने अनुभव किया कि हमें दूसरे की हानि से दुःख होता है। और ऐसा आदमी जो दुःख पहुँचाता है अच्छा नहीं। उन्होंने सोचा कि सुदास को ऐसा व्यवहार बच्चों और भृगु के साथ क्यों करना चाहिये? उसकी झोंपड़ी और चीजों को उसने इस प्रकार क्यों तोड़ फैंका? भृगु ने क्या बिगाड़ा था, वह सीधा-सादा भला आदमी उसने क्यों सताया?

और फिर वह क्यों आनन्द से अकड़ता हमको अँगूठा दिखाकर चला गया ? ऐसे तो वह हममें से हर एक को एक एक करके मार सकता है। उन्होंने अपने नायक से सभी बातें कहीं। उस दिन यह तय हुआ कि हममें से हर एक के कुछ अधिकार हैं और कुछ कर्तव्य हैं। जो अपना कर्तव्य न पालन करे और दूसरों के अधिकारों को छीने उसे सब मिलकर नायक के द्वारा सज़ा दिलवायें।

उस दिन इस ज्ञान के लिये वहां बड़ा उत्सव मनाया गया। सुदास को पकड़ कर सब लोग लाये। उसे अपने समूह से निकाल दिया। उस दिन उन्होंने इन शब्दों में किसी की प्रार्थना की:—

" हम अब अपने अधिकार और कर्तव्य कुछ कुछ समझने लगे हैं। ऐ हमारे देवता, हमारे शत्रुओं का तू नाश कर। हम साथ साथ चलें, साथ साथ बोलें, एक सा सोचें । और अपने अधिकारों को जानें। "

और बहुत दिन पहले कुछ ऐसे ही बीज जमे—उनका विकास अब हुआ और हम अब उन्हीं मूल बातों के अर्थ लगा कर नागरिक होगये हैं।

———

२

चुनाव की लड़ाई

(१)

बौहरे खेमचन्द को अपने धन का बल था। वे कहते थे मोटरों पर मोटरें खड़ी कर दूंगा। मिठाइयों की तश्तरियाँ लुटा दूंगा। इस पर भी न हुआ तो चांदी के कलदारों की वह मार मारूंगा कि दीनानाथ जी होश भूल जायँगे। इतनी भी वोटें न मिलेंगी कि अपनी ज़मानत भी बचा सकें। बच्चा चले हैं मेरे ख़िलाफ़ खड़े होने — × × ×

संयुक्त प्रान्त की असेम्बली का चुनाव होने जारहा है।

बौहरे खेमचन्द जी एक नामी गिरामी रईसों में से हैं। वैसे किसी को दान दक्षिणा देना आप धर्म के ख़िलाफ़ काम समझते है, किन्तु कलक्टरों, कमिश्नरों, गवर्नरों को दावत में लाखों रुपये ख़र्च करते आप कभी नहीं हिचके। साहबों की सेवा आपका मुख्य धर्म है। आप समझते हैं कलियुग में सरकारी साहब ही भगवान के अवतार हैं। और क्यों न हो जिनके पास शक्ति है वही पूजनीय है। इन साहबों का भी बौहरे जी को भरोसा था। अब तक जो इन पर इतने ख़र्च किये हैं वह किस दिन काम आयेंगे। उन्हें अपनी विजय के स्वप्न दिखाई पड़ रहे थे। दीनानाथ है किस गिनती में। खाने पीने भर को है नहीं असेम्बली में जायँगे! देश-सेवा का घमण्ड है, पर उसे कौन पूछता है। बौहरे जी अपने आपको बड़ा पक्का व्यापारी समझते थे। उन्हें यह गर्व था कि दुनियाँ को इन्होंने जैसा समझा है वैसा कोई क्या समझेगा और दीनानाथ की तो गिनती ही क्या है? उन्होंने यह भली भाँति समझ लिया है कि रुपये के सामने दीनानाथ की देश-सेवा रक्खी रह जायगी। पोलिंग की जगह एक ऐसा अच्छा खुशनुमा शामियाना लगाया जायगा कि देखकर लोगों का मन स्वयं आकर्षित होजाय। बिना बुलाये भीतर चले आवें। अच्छी से अच्छी तवायफ़ों को निमन्त्रण दे दिया गया था। पोलिंग से एक दिन पहले रात को उसी खेमे में उनका नाच होगा। इस तरह गाँव के लोग उनकी ओर झुक जायँगे। अच्छे अच्छे चित्र उसमें टँगे होने चाहिये। सबसे बड़ी अंग्रेज़ी फ़र्म को सजावट की आज्ञा दे

दी गई है। और पास फुलवाड़ी भी लगवाई जायगी। कुछ शराब, भंग का इन्तज़ाम रहेगा ही । बौहरे जी ने मुनीमजी को बुलाकर यह ताकीद कर दी कि इस मामले में वे हाथ खींचकर काम न करें। इसी समय उनके एक गुमाश्ता वहां आए। बौहरे जी ने उससे पूछा, कहो क्या हाल है ?

गुमाश्ते ने कहा—दीनानाथ की ओर से गाँव गाँव में सभाएँ करना निश्चय हुआ है। हमारी ओर से भी कुछ होना चाहिये।

बौहरे जी कुछ अन्यमनस्क होते हुए बोले—सभा वभा में क्या धरा है। क्यों मुनीम जी, रुपये का जादू जब सर पर चढ़ेगा तो एक एक किसान तुम्हारा चेला हो जायगा।

गुमाश्ते ने समझा बौहरे जी शायद नाराज़ हो रहे हैं तो बोला—नहीं मेरे कहने का यह मतलब था कि हमारी ओर से भी उसका जवाब होता रहे तो अच्छा है।

बौहरे जी को सभा में विश्वास न हो सो बात नहीं, पर उनका बड़प्पन और अमीरी उन्हें कैसे इजाज़त दे कि अपने आसामियों में जाकर कुछ खुशामद करें। वे तो इतना समझते थे कि वे मालिक हैं, ज़मीदार हैं; उनकी रिआया को उन्हें अपने आप बिना कहे राय देनी चाहिये। अधिक से अधिक वे उसे रुपया देकर ख़रीद लेंगे। वे वोटों की भीख क्यों मांगे ? उन्होंने कठोर मुद्रा में कहा—बौहरा खेमचन्द भीख नही माँगेगा, वह अहसान

नहीं लेगा। वह तो चाहता है कि लोग उसको वोट भी दें और उसका अहसान भी मानें।

उसी समय एक आदमी ने जाकर एक लाल पर्चा बौहरे जी के सामने रक्खा। बौहरे जी ने थोड़ी पलकें ऊपर उठाते हुए कहा—"क्या है?"

उस आदमी ने हाथ जोड़कर कहा—"दीनानाथ की ओर का एक आदमी यह बाँट रहा था। मैं ले आया।" गुमाश्ते ने पर्चा उठाकर पढ़ा—

"अपनी एक अमूल्य राय
अपने सच्चे हितैषी
श्री दीनानाथ एम० ए० को दीजिये

वे असेम्बली में जाकर आपके हित के लिए लड़ेंगे। ज़मीदारों के अत्याचारों, महाजनों के क़र्ज़, मालिकों के अत्याचार तथा लगान आदि से वे आपको बचाएंगे।

अवश्य अपनी एक राय उन्हें ही दें।"

बौहरे जी ने कहा—हां, विज्ञापन निकालो। और अगर ज़रूरत समझो तो सभा भी कर डालो, पर अच्छा तो यह है कि जहां दीनानाथ की सभा हो वहां रण्डियों की महफ़िल करा डालो, लोग सभा में जायँ ही नहीं और अपना नाम हो जाय।

गुमाश्ता जी ने अपने मोटे चश्मे वाली आंखों को नीचे

झुकाकर ऊपर की कोर से देखते हुए मनमें सोचा, बौहरे जी दुनियां की नई हालत से नावाक़िफ़ हैं। हम क्या करें?

डांकिया भी आ पहुँचा। उसने एक अख़बार बौहरे जी को दिया। बौहरे जी ने उलट पुलट कर उसे देखा। उसमें एक जगह लिखा हुआ था, सरगमा गांव के लोगों ने दीनानाथ को वोट देना निश्चय किया है। बौहरे खेमचन्द की कोशिशें अब तक वेकार गई हैं—उसे पढ़कर बौहरे जी का मुख फीका पड़ गया। उन्होंने कुछ कठोर दृष्टि गुमाश्ता पर डालते हुए कहा, क्यों जी तुम तो परसों कह रहे थे कि सरगमा सोलहों आना हमारा है। यह ख़बर कहती है वह दीनानाथ का होगया। गुमाश्ते ने अपने चश्मे को नाक पर खिसकाते खिसकाते कहा, यह अभी आज कल में ही परिवर्तन हुआ है। उस दिन तो सब यही कह रहे थे कि बौहरे जी हमारे अपने हैं। हम उन्हीं को राय देंगे। इस समाचार को सुनकर बौहरे जी अधिक चुप बैठे न रह सकते थे। उन्होंने .खुद जाकर नब्ज़ देखने का इरादा किया। मोटर बुलाई गई और वे गाँव को चल दिये।

(२)

सरगमा शहर से दूर बिल्कुल भीतरा एक गाँव है। बौहरे जी की ज़मीदारी में तो है किन्तु इतना दरिद्र है कि उसे अपने ज़मीदार से कोई हार्दिक प्रेम नहीं रह गया। जिस समय बौहरे जी के गुमाश्ता गाँव में गये थे बड़े प्रेम से मिलकर सब गाँव वालों को

समझाया था कि वे अपनी राय बौहरे जी को दें। गाँव वाले राय का मतलब ठीक न समझते थे। उन्हें जब यह समझा दिया कि कोई खर्च-वर्च की बात नहीं तो उन्होंने सोचा अपने ज़मीदार हैं, हम उनकी रिआया हैं। हमारा धर्म है कि हम उनकी मदद करें। वे जो चाहते हैं हम करदें। अगर मेह न पड़े, अकाल हो जाय तो उसमें बेचारे ज़मीदार का क्या खोट, अपने करम को कोसो। ज़मीदार लगान वसूल न करें तो फिर सरकार को क्या दें? आखिर उस बेचारे को भी तो देना पड़ता है। उसके प्यादे कुछ ज़ोर ज़बर करते हैं तो वे करना ही चाहें, हम ही कौन उनसे सीधे मुँह बोलते हैं—हमारा अभाव हमारे सारे रस को चूस लेता है। ज़मीदार तो हमारा माई-बाप है। हमारे दादा परदादा ने उसकी ज़मीन जोती है। उसका नमक खाया है, और नमक हलाल किसान धार्मिक आवेश में आकर कह गया कि उन्हीं को वोट देंगे, सोलहों आने गाँव उनका है। किन्तु काम में लग जाने से वात्सल्य का उफान ठण्डा होगया, संसार की कठिन वास्तविकताओं से संघर्ष करने में हृदयावेगों से काम नहीं चलता। फिर किसान राय के पचड़े को भूलकर मिट्टी गोड़ भोजन जुटाने की धुन में लग गया। इस बार उसकी नींद को दीनानाथ के एजेण्टों ने तोड़ा। एक दिन वे कुछ भजन-मण्डलियां ले मोटर से गाँव में आ धमके। फर्श बिछा दिया गया और भजन होने लगा। उसकी ध्वनि गाँव में एक ओर से दूसरे छोर तक व्याप्त होगई। धीरे धीरे गाँव के सभी लोग वहां आ डटे।

लोग यह जानने को उत्सुक थे कि यह क्या होरहा है और क्यों हो रहा है ? कोई और प्रपंच है क्या ? क्या ठगने का कोई नया रास्ता निकाला गया है ? जब सैकड़ों उत्सुक आंखें दीनानाथ के आदमियों की ओर ऐसे प्रश्नों के साथ देख रही थीं, तभी भजन खतम हुआ और एक महाशय बोलने लगे—

" प्यारे भाइयो ! आप यह जानना चाहेंगे कि हम लोग यहां क्यों आये हैं ? हमारा उद्देश्य आपको आपके एक मतलब की बात समझाना है, जिसे बिना समझे आप अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार सकते हैं। वह बात है ' राय ' के सम्बन्ध में। क्या आप जानते हैं राय से क्या होता है ? वह कैसे दी जाती है ? उसका फल क्या होता है ? उससे आपका क्या लाभ और क्या हानि हो सकती है ? "

बात लोगों के दिल की थी। उस दिन जब गुमाश्ता जी ने उन्हें गोल मोल कुछ समझाया था तब वे ठीक कुछ न समझ सके थे। वे आश्चर्य कर रहे थे कि अब तक तो ज़मीदार को हमसे लकड़ी, घी, अन्न, शाक, लगान आदि की ज़रूरत पड़ती थी अब यह ' राय ' क्या चीज़ है जो हमसे वे चाहते हैं। फिर भी बातों से उन्हें यह आभास हो गया था कि यह चीज़ है कुछ काम की। आज उसी पर कुछ सुनने के लिये वे उत्कण्ठा से खिसक कर सिमिट कर और भी वक्ता महोदय के पास हो रहे। उन्होंने कहा— " हम नहीं जानते ' राय ' क्या है ? " तब वक्ता ने कहा, धैर्य

से सुनिये, मैं आपको यही बतलाने आया हूँ। सरकार ने एक ऐसी सभा बनाई है जिसमें देश के हित के लिये क़ानून बना करेंगे। यह सभा लेजिस्लेटिव असेम्बली कहलाती है। यह जो क़ानून बना देगी उसी के मुताबिक काम होगा। तुम लोग किसान हो, तुमसे जो लगान आज वसूल किया जाता है उसे यह सभा चाहे तो बढ़ा दे और चाहे तो घटा दे। यह सभा यदि यह क़ानून बना दे कि जो ज़मीन तुम जोत रहे हो वह तुम्हारी हो जाय तो वह तुम्हारी हो जायगी फिर ज़मीदार उसे नहीं छीन सकेगा।

एक ओर से आवाज़ आई—"तो इस सभा में बड़े बड़े अँगरेज़ गोरे बैठेंगे?"

"ठहरिये मैं अभी बताऊंगा। पहिले आपने यह समझ लिया कि यह सभा तुम्हारे लाभ के या हानि के क़ानून बना सकती है। इस सभा पर ही तुम्हारा भविष्य निर्भर करता है। अब सुनो, यह सभा उन लोगों की बनी होगी जिन्हें तुम चुनोगे। तुम्हारे चुने हुए लोग ही उस सभा में बैठ कर तुम्हारे लिये क़ानून बनायेंगे।

फिर एक आवाज़ ने पूछा—हम कैसे चुनेंगे?

दूसरे ने कहा—अच्छा, हम आपको चुनते है।

कुछ ने कहा—ठीक है, ठीक है, आप खूब समझाते हैं। हमने आपको चुना। कुछ लोग कानाफूंसी करने लगे, क्यों भाई, अपने मुखिया को क्यों न चुनें? मैं तो अपने भाई को चुन दूंगा। तू अपने काका को चुन दीजो।

वक्ता महोदय ने कहा—शान्त रहो। मैं बताता हूँ किसे चुनेंगे और कैसे चुन सकेंगे ? चुनने के लिये और चुने जाने के लिये एक विशेष योग्यता की आवश्यकता है। आप में से—

(क) जो संयुक्त प्रान्त में ऐसे मकान के मालिक हों जिसका वार्षिक किराया २४) रु० या उससे अधिक हो, या

(ख) जो संयुक्त प्रान्त में ऐसे शहर में जहां पर म्युनिसिपैलिटी द्वारा हैसियत कर लिया जाता हो, १५०) रु० की वार्षिक आय पर यह कर देते हों, या

(ग) जो भारत सरकार को आय-कर देते हों, या

(घ) जो ऐसी ज़मीन के मालिक हों जिसकी आय निर्धारित रक़म या उससे अधिक हो, या

(च) जिनके अधिकार में निर्धारित आय या उससे अधिक की ज़मीन हो, या

[संयुक्त प्रान्त में १० रु० या अधिक वार्षिक लगान देने वाले व्यक्ति निर्वाचक हो सकते हैं।]

(छ) जिनमें शिक्षा सम्बन्धी निर्धारित योग्यता हो, या

(ज) जो भारतीय सेना के पेंशन पाने वाले या नौकरी छोड़ चुकने वाले अफ़सर या सिपाही हों। वे चुन सकेंगे।

वे अपनी राय उसको देंगे जो असेम्बली में जाने के लिये

खड़ा किया गया होगा। जिनको सबसे अधिक रायें मिलेंगी वही चुन लिया जायगा। यदि आप चाहते हैं कि आपके कष्ट दूर हो जायँ तो ऐसे आदमी को अपनी राय दीजिये जो आपके साथ हमदर्दी रखता हो, जो आपका भला चाहता हो, जो वहां जाकर ऐसे क़ानून न बनवाये जिनसे तुम्हारा खून चूसा जाय। वे ज़मीदार जो तुम्हारा रक्त पी पी कर मोटे हुए हैं, क्या कोई ऐसा क़ानून बनने दे सकते हैं जिनसे उनकी शिकार उनके पंजे से निकल जाय। जिसने तुम्हारे सुख के लिये अपने सुख की चिन्ता न की हो, जो विद्वान् हो, जो असेम्बली में अपने भाषणों से प्रभाव पैदा कर सके, जिसको स्वार्थ का भूत सवार न हो, जो इस लिये जा रहा हो कि सचमुच उसे कुछ करना है, जिसने अपनी सेवाओं का प्रोग्राम बना लिया हो ऐसे आदमी को चुनो। इसी में तुम्हारा कल्याण है। लोभ में आकर अपनी राय बेचना मत। तुम्हारी राय का मूल्य उस राय के बदले में मिलने वाले रुपयों से कहीं अधिक है। यह भी ख़याल रक्खो कि राय ख़रीदने वाला अपनी कमज़ोरी महसूस करता है। वह समझता है उसमें कुछ असलियत नहीं, इस लिए उसे कोई पूछेगा नहीं; इस कमी को पूरा करने को वह रायें ख़रीदता है। तुम्हें बड़े बड़े लालच दिये जायँगे। पर फिसलना मत। यह बहादुरों का काम नहीं। उठो, प्यारे किसानो, अपनी ताक़त पहचानो। एक होकर अपने वास्तविक हितैषी को राय दो।"

वक्ता ने बोलना बन्द कर दिया। एक दम सन्नाटा था, मानो

भाषण का प्रभाव सब पर छागया हो। उस दिन सबने अपने आप सोचा कि दीनानाथ सा योग्य तथा उनका हित चाहने वाला दूसरा नहीं, और उन्होंने तय किया कि वे उसीको वोट देंगे। वातावरण बदल गया था। अपने ज़मीदार के ऊपर उनमें श्रद्धा नहीं रह गयी थी।

ऐसे ही अवसर पर बौहरे जी मोटर हार्न बजाते गाँव में आ धमके। लोगों ने आज एक सभा करके 'सबका अन्तिम निश्चय जान लेने का इरादा किया था। महफ़िल भी लग गई थी। आज गाँव के ही लोग बोलने वाले थे। एक जोश में कह रहा था—

"रूस का सा दिन पास आने वाला है। वह हम तुम किसान लोग ही ला सकते हैं। उखाड़ फैंको ज़मीदारी प्रथा को। हमारे ज़मीदार ने क्या कम ज़ुल्म किये हैं? हममें से कोई भी उन्हें वोट नहीं देगा।"

बौहरे जी अपनी कचहरी—चौपाल पर पहुँचे तो उन्हें उस सभा का हाल मालूम हुआ। उनके क्रोध का ठिकाना न रहा। उनकी रिआया और उसका यह व्यवहार। इन भुनगों को ठीक करना ही होगा। ज़मीदार ने उनके लिये क्या कम उपकार के काम किये हैं। वे रिआया के पिता की भाँति हैं। उन्होंने सोचा इन उद्दण्ड लड़कों को बिना दण्ड दिये काम नहीं चलेगा। इस बात पर उन्हें दुःख था कि ऐसे कृतघ्न गाँव के साथ आज तक उन्होंने कोई भी रिआयत क्यों की? कभी लगान कम किया,

कम ब्याज पर रुपया दिया, वसूलयाबी में सख़्ती नहीं की। आज ज़रासा काम आ पड़ा तो उनके ये मिज़ाज़.....

उधर गाँव वालों की सभा में कोई कहता जारहा था—

" हमने आज तक ज़मीदारों का बहुत आतङ्क सहा है, अपने घर के बच्चों को बिलबिलाता छोड़ ज़मीदार का भण्डार भरा है। ख़ुद फटे कपड़े पहन; कभी कभी नँगे रहकर भी उन्हें क़ीमती वस्त्र पहनाए हैं। आज ज़मीदारों की शान शौक़त किसके कारण है ? हमीं से ठग कर, हमीं से हमारे रुपयों पर ब्याज से एक के तीन करके ये मोटे हुए हैं, आज तक हमने अपनी आस्तीन में साँप पाला है। हमको अब चेतना होगा। और इस ज़मींदार जाति को उसकी कृतघ्नता का फल चखाना होगा। इस जाति ने जिस हाँडी में खाया है उसी में छेद किया है "—

और ठीक यही बात सोच सोचकर ज़मीदार का क्रोध बढ़ रहा था। उन्होंने कारिन्दा बुलवाया और कहा—बताओ सभा में कौन कौन भाग ले रहा है ? कौन कौन हमारे आदमियों को हमारे ख़िलाफ़ उभाड़ रहा है ? इसका पता लगाओ।

कारिन्दा चलने को तैयार हुआ तो बौहरे जी ने सोचा कि ख़ुद चलकर ही क्यों न देखूं। पर कहीं वे लोग क्रोध में हुए; नहीं, डरना किस बात का। कुछ लठैत साथ में ले लूँ।—ठहरिये, कारिन्दा साहब ! अपने आठ दस आदमियों को साथ ले लीजिये। मैं स्वयं चलकर देखता हूँ।

कारिन्दा ने एक प्यादा भेजकर कुछ आदमी बुलवाये। अपनी लाठी-बन्द फ़ौज को साथ लेकर अब ज़मीदार साहब चलेंगे और किसानों को मज़ा चखा देंगे कि उन्होंने अपनी मनमानी करने का कैसे निश्चय किया! वे स्वतन्त्रता पूर्वक क्यों सोचने लगे! उन्होंने कोट पहना, साफा सँभाला कि ठहर गये, और कारिन्दा से कहा—"हमारा जाना क्या ठीक होगा? नहीं, उन बदमाशों को यहीं लाओ। कहना कि ज़मीदार साहब बुला रहे हैं। जो नहीं आएगा बेदख़ल करा दिया जायगा। उसके साथ कोई रिआयत नहीं की जायगी।"

आदमी दौड़ाए गये। वहाँ सभा समाप्त हो चुकी थी। ज़मीदार के आने का समाचार वहाँ पहुँच चुका था पहले ही; और तभी सब लोग दीनानाथ को वोट देने का निश्चय करके अपने अपने खेतों को चले गये थे कि ज़मीदार का सामना न हो जाय। यह समाचार सुना तो ज़मीदार का क्षोभ से मुँह पीला पड़ गया। वे झुँझलाये हुए मोटर में बैठकर चल दिये। आज उन्हें कुछ कुछ मालूम हुआ कि दीनानाथ को जो वे नाचीज़ समझते थे सो वही नाचीज़ उन पर पूरी तरह हावी होने जारहा है। पर उन्होंने सोचा कि मेरा क्रोध करना अच्छा नहीं रहा। इन लोगों को रुपये से जीता जाना चाहिये। घर पहुँचते पहुँचते उनका तात्कालिक रोष दूर होगया। उन्होंने फ़ौरन ही आज्ञा निकलवा दी कि सरगमा गाँव के किसानों का सारा बक़ाया माफ़ कर दिया गया।

गाँव वालों को जब यह ख़बर सुनाई गई तो उन्होंने कहा

कि यह तो हमारे संगठन की पहली विजय है। भगवान ने कैसी अच्छी भाँति हमारे स्वतन्त्र शुभ निश्चय का मीठा फल हमें दिया है। हम अवश्य दीनानाथ को वोट देंगे। उन्हीं के नाम के प्रताप से तो यह सब कुछ हुआ है। ज़मींदार ने जो ये अर्थ सुना तो उसका दिल बैठा पर हिम्मत न हारी।

(३)

चुनाव का दिन आगया। पौलिंग के पास बड़ी धूमधाम थी। मोटरों पर मोटरें दौड़ रही थीं। दोनों दलों के अलग अलग डेरे लगे हुए थे। एक ओर नाच गाना हो रहा था तो दूसरी ओर राजनीति समझाई जा रही थी। पूड़ियों के कढ़ाव चल रहे थे। मिठाइयाँ बँट रहीं थीं। भूखे भिखारियों की भाँति एजेण्ट राय वालों के सामने रिरियाते फिरते थे। दाव पेंच चले जा रहे थे। बड़ी चतुराई भरी आँखों से यह ताड़ने की कोशिशें हो रही थीं कि कौन किधर जायगा।

एक गाँव का एक मुखिया आया। वह नाम का मुखिया नहीं था सचमुच वहाँ का सरदार था। यह उसी सरगमा गाँव का था। सरगमा गाँव वालों ने आख़िर यह तय किया था कि रुपये पैसे ख़ूब वसूल करो ज़मींदार से, और राय चुपचाप दो दीनानाथ की। गाँव वालों ने अपनी राय का बोझ इन्हीं मुखिया पर डाल दिया था। जिधर ये चलेंगे उधर ही सब चलेंगे। मुखिया के हाथ में सौ वोटें थीं। मुखिया का महत्व कितना था? पौलिंग केन्द्र के

पास जैसे ही मुखिया पहुँचा कि ज़मींदार का गुमाश्ता आ पहुँचा। उधर दीनानाथ का आदमी भी आगया।

गुमाश्ता—आहा मुखिया जी! बौहरे जी का डेरा इधर है। वे आपका बड़ा इन्तज़ार कर रहे हैं। कह रहे थे कि मुखिया जी सा सच्चा आदमी दूसरा नहीं।

दीनानाथ का एजेण्ट— इन क्षणिक ख़ुशामद की बातों में न आजाइयेगा। आज आपकी ख़ातिरदारी आपको पीसने के लिए ही की गई है। आइये दीनानाथ जी के डेरे की ओर आइए!

गुमाश्ता—जा बे, आया है दीनानाथ वाला। मुखिया जी पहले वायदा कर चुके हैं। आइए साहब।

दी० ए०—अजी उधर न जाइयेगा। वह आपकी क़ब्र है। यदि ज़िन्दा रहना चाहते हैं तो इधर आइए, चलिये।

गुमाश्ते को लगा कि मुखिया दीनानाथ की ओर झुक रहा है। उसने उसका हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींचते हुए कहा कि बौहरे के रुपये ऐसे मुफ्त के नहीं कि आसानी से डकार जाओगे। चलो इधर।

दी० ए०—हाथ छोड़ दीजिये। आप किसी के साथ बल प्रयोग नहीं कर सकते। कनवेसिंग कर सकते हैं। इन्हें समझा सकते हैं। जो इनकी स्वतन्त्र राय हो वह करने दीजिये।

मुखिया सङ्कट में था। उस पर खुले आम रुपये लेने का

अभियोग लगा दिया गया था। ऐसी दशा में भी बौहरे जी की ओर चले जाना अपने हाथों अपना अपमान करना था, अपनी इज्ज़त में बट्टा लगाना था। उसने झिड़ककर कहा—कैसे रुपये? कब दिये? किसने दिए? डोलता है चपरकनाती!

गुमाश्ता उसका हाथ अपनी ओर खींच रहा था, मुखिया ने एकदम हाथ को ढील दे दी। गुमाश्ता जी भरभरा कर चित गिर पड़े। चारों ओर भीड़ इकट्ठी होगई थी। वह गुमाश्ता जी को इस प्रकार गिरते देख ठहाका मारकर हँस पड़ी। अब गुमाश्ता जी के क्रोध का पारा चढ़ गया।

जब मनुष्य को यह पता चल जाता है कि उसे हिक़ारत की नज़र से देखा जा रहा है, तो वह और लोगों को भूला सा जाता है, उधर दृष्टि नहीं करता; और क्रोध में अपने अपमान करने वाले पर टूट पड़ता है। यही अवस्था गुमाश्ता जी की हुई। धुँधिया कर दौड़े मुखिया पर। पहले तो धक्का दिया और फिर हाथ पकड़ उसे पूरे बल से अपनी ओर खींच लेजाने लगे। उधर दीनानाथ के एजेण्ट ने पुलिस बुलाली और पौलिंग अफ़सर को दूसरी पार्टी की इस प्रकार की ज्यादती की ख़बर दी। पौलिंग अफ़सर ठीक उस समय घटनास्थल पर पहुँचे जब गुमाश्ता मुखिया को खींचता हुआ कह रहा था, "देखूँ तू कैसे बौहरे जी को वोट नहीं देता?" पुलिस ने पकड़ कर उसे अलग कर दिया। पौलिंग अफ़सर ने लानत मलामत की। बौहरे जी को बड़ी लज्जा हुई। दीनानाथ के डेरे में ख़ुशियाँ मनाई गईं।

× × ×

रायें पड़ गईं। इस घटना का प्रभाव यह हुआ कि सभी को ज़मींदार से घृणा हो गई। और ऐसा तख़्ता पलटा कि सारी वोटें दीनानाथ को मिलीं। विजय दीनानाथ की हुई। बेचारे बौहरे जी पर नाजायज़ दबाव डालने का मुक़दमा चल गया।

सभी उस दिन यह भली प्रकार समझ गये कि विचारपूर्वक स्वतन्त्र भाव से वास्तविक देश-सेवक और योग्य आदमी को ही राय देना अच्छा है।

———

३

खण्डहर का उपदेश

" हटो हटो, मैं नहाऊँगा। ठहर री प्रमिला, फिर घड़ा भर लेना, मैं नहालूँ "—ऐसा कहता हुआ एक जवान भीड़ चीरकर नल के पास आ खड़ा हुआ।

शहरों में नलों की एक भारी भीड़ अपने घड़ों तथा कलशों को लिये हुए पानी भरने के लिये नल को घेरे खड़ी रहती है। प्रातः शौच जाकर हाथ भी नल पर धोये जायँगे, कुल्ला-दाँतुन भी वहीं किया जायगा। नहाना भी वहाँ से अच्छा कहाँ हो सकता है ? गलियों के नलों पर तो कहीं कहीं औरतें अपने चौके के काले बर्तन माँजतीं, दाल-साग धोतीं मिलेंगी। एक नल पर इतने

बहुत से काम होते हैं। और सभी को अपना काम करने की जल्दी मची रहती है। धक्का-मुक्की करने की जिसमें ताक़त है, जो एक साँस में सौ गालियाँ सुना सकता है, जिसकी आवाज़ जितनी ही ऊँची है वह सबको परास्त कर नल की टोंटी पर जा पहुँचता है, और फिर जैसी चैं-चैं मैं-मैं रहती है, जो उछल-कूद और पैंतरेबाज़ी होती है, जो आँखें दिखाई मटकाई जाती हैं, हाथ हिलाये जाते हैं, दाँत दिखाये या चमकाये जाते हैं, वह सब अभूतपूर्व होता है! नल के पास कोई दिन भी शान्ति से चला जाय तो वह दिन ही अशुभ समझा जाना चाहिए। तो वहाँ पहले यह हो ही रहा था कि—

"प्रमिला तू पीछे आई थी, तैंने घड़ा क्यों लगा दिया?"

"अरे, ठाकुर जी की पूजा-बन्दना को देर हो रही है।"

"आई, देर वारी, और किसी के यहाँ ठाकुर जी थोड़े हैं—चल हट।"

"भर लेने दे भैंना।"

"कोई तेरी धौंस में हैं, तेरे बाप का नल है, आई खसम खूसटी, ठाकुर जी की पूजा करेगी, दीदा तौ ठहरते नहीं, लपक-झपक इधर-उधर—अरे मानती नहीं, अड़ाये देती है।"

आख़िर प्रमिला को जैसे-तैसे पहले भरने की इज़ाज़त मिल गई। वह घड़ा भर ही चुकी थी कि जीवनसिंह जवान-पट्ठा आदमी भीड़ हटाता आया और नहाने की तैयारी करने लगा।

सब पर उसका आतङ्क था। प्रमिला ने अपना घड़ा हटाया और जैसे ही जीवनसिंह ने नल के नीचे को पैर बढ़ाया कि एक लड़की ने कहा, "दादा, देखो ऊपर नल पर जो तख़्ती लगी है उस पर क्या लिखा है?" लड़की पढ़ी लिखी थी, उस जवान ने कहा—"तुही सुना न क्या लिखा है?" लड़की ने पढ़ा—

"यह नल पीने के पानी के लिये है। यहाँ नहाना व कपड़े धोना, या मवेशियों को पिलाना अथवा नहाना मना है। जो ऐसा करेंगे उनका चुँगी चालान कर देगी।"

"कर दिया चालान," जीवनसिंह ने दर्प से कहा—"एक दफ़ा नहीं सौ दफ़ा यहाँ नहाऐंगे। जा, तुही बुलाला चुँगी के ताऊ को, चालान कर जाय। जीवनसिंह से किसी की क्या हिम्मत पड़ सकती है। और क्योंरी बजमारो, जब तेरा दादा पाँच मिनट पहले नहा गया था तब क्या यह तख़्ती उखड़ गई थी या आँक मिट गये थे या तेरी आँखें फूट गईं थीं?" प्रमिला घड़ा सँभाल रही थी, उसने धीरे कोमल किन्तु दृढ़ शब्दों में कहा—लाला, ज़रा छींट न उड़ें। घड़ा ख़राब हो जायगा। थोड़ा ठहर जाओ, मैं घड़ा ले जाऊँ।"

जीवनसिंह पर लड़की की बातों से जोश का नशा छा गया था उसकी दृष्टि में सँसार का सब कुछ उस काल तुच्छ हो चुका था। उसने सोचा उसका कलक्टर भी कुछ नहीं कर सकता, पुलिस कुछ नहीं कर सकती, एक हाथ से सिर फोड़ सकता हूँ।

जोश का नशा अन्धा होता है और बहरा भी। उसे अपने अलावा कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता। प्रमिला और उसका घड़ा उसकी आँखों में न समा सके। वह अपने सिर को नल की धार के नीचे करके अपने पुष्ट हाथों से फुर-फुर करके ज़ोर से नहाने लगा।

प्रमिला धर्म-भीरु स्त्री थी। वह दूसरों का छुआ न खाती थी, न पीती थी। यदि नहाने धोने के बाद उस पर किसी की छाया भी पड़ जाय तो वह दुबारा नहाती थी फिर यहाँ तो घड़े की बात थी। सभी हिन्दू कहलाने वाले व्यक्ति अपने घड़े को नहाने की बूँदों से बचाते हैं। सो जीवनसिंह इस बात को जानता न हो ऐसी बात नहीं थी। कुछ तो दर्प का उभार; कुछ जवानी की सनक और कुछ कलह-तमाशा देखने का कौतूहल; उसने एक हाथ ज़ोर से अपने बालों को फरफराते हुए जो फेरा तो बूँदें ऊँची उचटीं और घड़े पर जा पड़ीं—वह घड़ा भी किसका ?—प्रमिला का। सब सशङ्कित हो उठे। अब बिना तने न रहेगी! प्रमिला की भौंहें तन गईं। वहीं मनकू खड़ा हुआ था, वह भी मनचला युवक था। और, नलों के पास, यह कोई क़ायदा नहीं कि मनचले युवक और युवतियाँ खड़ी न हों, वह तो सार्वजनिक स्थान है, कम से कम पानी भरने के लिये सभी आ सकते हैं; अतः जब तक समाज का नैतिक नागरिक भाव ही ऊँचा न हो यह कम सम्भावना है कि मनकू ने जैसी बात कही वह कही न जाय। मनकू ने कह दिया—वाह, क्या हौसला है! कैसी कमान खिंच रही है!

यह घृताहुति थी, जो आग शील और लाज की राख से ढकी हुई थी, वह भड़क उठी। उसने काँप कर घड़ा पटक दिया। भड़ाक से फूटकर उसका जल उछला और बहुतों के कपड़े भीग गये।

वह खड़ी होकर एक-एक को कोसने लगी। खड़े आदमियों को लुच्चा और लफँगा बताने लगी। अन्य औरतों की सहानुभूति भी प्रमिला की ओर होगई। खासा वाक्-युद्ध छिड़ गया। एक ओर औरतें थीं दूसरी ओर जीवनसिंह। मनकू तो काण्ड में भीषणता आते देख खिसक गया। एक औरत झपटी भी उसकी लँगोटी पकड़ खींचने को पर वह झटके से दूर जा रहा। अकेला जीवनसिंह भी उनके लिये काफ़ी था। दोनों दलों में क्रोध का पूरा जोश आगया था। कुछ सहानुभूति दिखाने वाले भी आ गये। और वे जीवनसिंह को शान्त करने लगे। पर कड़ी रास कसने से जैसे घोड़ा और तुड़ाता है वैसे ही जीवनसिंह प्रमिला पर चढ़-चढ़ दौड़ने लगा। ऐसा लगने लगा कि वह अब प्रमिला पर हाथ छोड़ने ही वाला है कि प्रमिला का पति वहाँ आ उपस्थित हुआ। वह अपनी पत्नी का क्षोभ समझ गया। और उसे पीछे धकेलता हुआ बोला—आ बेहया, मुझसे बोल, क्या औरतों पर अपनी जवानी का रौब दिखा रहा है। मैं देखूँ तेरा हौसला। घोड़े की मानो रास टूट गई। क्रोध में अन्धा हो गया जीवनसिंह, आव गिना न ताव, पास रक्खा हुआ एक कलसा उठाया और चला दिया प्रमिला के पति पर। पर खैर यह हुई कि हाथ ओछा

पड़ गया और कलसा उसके पञ्जों पर पड़ा। कुछ लोग खींचकर जीवनसिंह को एक ओर ले गये, और कुछ प्रमिला के पति को। पर कुछ ऐसी बातें हुई थीं जो जीवनसिंह को खटक रही थीं। उसके नये ख़ून में उबाल आरहा था। वह इन ढोंगी धर्मात्माओं को नेस्त नाबूद कर देगा। कहा तो कहा ही कैसे! एक छींट गिर गई, एक घड़ा फूट गया, तो क्या हुआ? सब नहाते हैं कुछ भी नहीं होता। उसी के नहाने में पाप था। सब उससे जलते हैं। प्रमिला सबसे ज्यादा जलती है। जलते हैं तो अब आगे नहीं जलने दिया जायगा। एक-एक को तोड़ के रख दूंगा। हैं किस भरोसे में! मैं समझता किसे हूँ। देखूँगा, लायें फ़ौज। जब तक ख़ून न होगा यह तेज़ और आये दिन की तक़रार दूर न होगी। उसे घसीट कर लोग उसके घर में बन्द कर आये थे। पर उसे ऐसा लगा कि सब लोग उसे कायर समझ रहे हैं। उसके सामने प्रमिला के पति का चेहरा आगया, मानों वह बिरा-बिरा कर कह रहा था, बड़े आये हाथ चलाने वाले। मार न डाला, तब देखते जब कुछ कर लेते। दूसरे का कलसा भी तोड़ दिया। उसके कान में जैसे आवाज़ आई—"कहाँ है जीवन, आवे न, घर में छिपकर औरतों की भाँति क्या बैठा है?"

जीवनसिंह और न रुक सका, उसने लाठी सँभाली और उठ खड़ा हुआ। दर्वाज़े के बाहर लाठी तानकर निकला और आ खड़ा हुआ नल के पास। वहाँ आकर ललकारने लगा।

जीवनसिंह के क्रोध को सभी जानते थे। वह शहर भर में

अपने क्रोधी और उद्दण्ड स्वभाव के लिये मशहूर था। लड़ाई मोल लेने की वैसे ही उसे आदत थी, यहाँ तो उसे लग रहा था कि उसका अपमान किया गया है, उसकी धाक को धक्का पहुँचा है। कलशे की चोट से भी सुजान—प्रमिला का पति--जो बच गया, वह उसके कौशल की असफलता की दुन्दुभी थी, और जब तक क्रूरता पूर्वक वह सुजान का गला न घोंट देगा, उसके हाथ पाँव न तोड़ देगा, उसे सान्त्वना कैसे मिलेगी? कैसे मिलेगी? उसकी खोई धाक कैसे लौटेगी? उसका दिल कचोट-कचोट कर रह जाता था। वह उफन-उफन कर अपनी लाठी को आज़माता था। उसका क्रोध यह देखकर और भी भड़क गया कि सब मरे से छिप गये हैं, वह अकेला यहाँ भूँक रहा है। उसने सोचा—अच्छा उसे उल्लू बनाया है! सबके सब छिप गये हैं, जैसे किसी के ज़ुबान ही नहीं! यह मेरा तमाशा देख रहे हैं।—ऐसा ख़याल समझदार और शान्त आदमी को भी क्षोभ से पागल बना सकता है, जीवन तो क्रोधी था। उसने कहा—कोई नहीं बोलेगा तो घरों के किवाड़ तोड़ डालूँगा।

वह आगे बढ़ गया और प्रमिला के किवाड़ों में कस कस के लाठियाँ चलाने लगा। भीतर सिवाय प्रमिला के कोई न था और वह भयभीत होकर कुररी—क्रन्दन कर रही थी। किवाड़ पर पड़ने वाली प्रत्येक चोट उसे ऐसे लग रही थी कि उसकी हड्डियों को तोड़े दे रही हो।

प्रमिला का पति सुजान समझदार आदमी था। वह ताड़

गया कि जीवनसिंह का क्रोध शान्त नहीं हुआ है। वह उपद्रव अवश्य मचावेगा। एक दो मनुष्यों के सिर फूट जायँगे। तब क्या किया जाय? कुछ लोगों को इकट्ठा कर जीवनसिंह को समझाना झगड़े को बढ़ाना होगा। जीवनसिंह में जो अभिमान कूट-कूट कर भरा है उसके कारण क्रोध के समय उसे समझाना आग में घी डालने के बराबर है। फिर भावी आपत्ति से रक्षा कैसे हो? जीवनसिंह को कोई काम भी नहीं था। यह आशा ही व्यर्थ थी कि वह काम पर चला जायगा और कुछ काल के लिये बला टल जायगी। उसने सोचा—तब क्या किया जाय? ठीक, उसे याद आया कि ऐसे आपत्ति के क्षणों में रक्षा करने के लिये ही पुलिस बनाई गई है। वह पुलिस में इस ख़तरे की सूचना दे देगा। यदि पुलिस का एक सिपाही भी गली में आज कई बार चक्कर लगा आये तो उसके भय से जीवन कोई गड़बड़ न कर पायेगा। उसने यही निश्चय किया, शान्ति-रक्षा का इससे अच्छा उपाय उसे दूसरा न मिला। वह थाने में पहुँच गया। वहाँ उसने अपनी प्रार्थना लिखा दी।

वस्तुतः पुलिस का काम ही यह है कि वह झगड़ों का शोध स्वयम् रक्खे और जहाँ झगड़ा होते देखे वहाँ अपनी ओर से ही पहुँच कर शान्ति-प्रिय नागरिकों की रक्षा करे और उसे अपने शान्तिपूर्ण व्यवसाय को चलाने में सुविधा दे।

वहाँ के थानेदार भले आदमियों में से थे। उन पर पुलिस की ख़राबियों का ज्यादा असर न था। वे बी० ए० थे और

अपना कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य समझते थे। वे समझते थे कि पुलिस पर ही नगर के जान माल का दार-मदार है। जिन लोगों में पशु है उन्हें रोकना वे अपना धर्म समझते थे। जैसे ही सुजान ने अपनी प्रार्थना सुनाई वे तैयार होगये और दो सिपाही घटनास्थल पर भेज दिये।

सुजान गली में पहुँचा तो दृश्य देखकर धक् रह गया। वह यह कभी सोच न सका था कि जीवन क्रोध में इतना पागल हो जायगा कि घर की किवाड़ें तोड़ने की तैयारी कर देगा। जीवन-सिंह लाठी पर लाठी किवाड़ों में मार रहा था। भीतर प्रमिला के चीख़ने की आवाज़ सुजान के हृदय को चीर कर पार हो रही थी। अपनी स्त्री का आर्तनाद सुनकर भी कौन धैर्य बनाये रख सकता है! उसके सामने से उसका ज्ञान और धैर्य लुप्त होगया। उसने क्रोधपूर्ण शब्दों में कहा—जीवन! ख़बरदार जो अब लाठी चलाई, ख़ून हो जायगा ख़ून।

जीवनसिंह चौंका, और उलट कर लाठी सँभालता हुआ बोला—वह तो होगा ही, और उसने लाठी चलाई। उसी क्षण उसे पुलिस के सिपाही दिखाई पड़े। उसे काठ मार गया। हाथ शिथिल होगया और लाठी छूटकर दूर जा पड़ी। सिपाही जीवन को लाठी चलाने के लिये सन्नद्ध देख चुके थे। उन्होंने उसे गिरफ्तार कर लिया, किन्तु सुजान यह न चाहता था। वह हर-गिज़ यह बात पसन्द न करता था कि उसकी गली का उसी का एक भाई पुलिस के द्वारा पकड़ कर बे इज्ज़त हो। वह तो केवल

यह चाहता था कि पुलिस का पहरा सा रहने से विपत्ति न आ सकेगी। पर तीर निकल चुका था। परिस्थितियाँ भिन्न हो चुकी थीं। जीवनसिंह वह कर चुका था जिसकी वह कल्पना भी न कर सकता था। जीवनसिंह को पकड़ा गया देखकर इसकी आँखों से आँसू छलछला पड़े। उसने पुलिस से कहा—दीवान जी, आप पकड़ें न। हमारा भाई है। हम आपस में सुलझ लेंगे। दीवान ने कहा—नहीं, हमने अपनी आँखों देख लिया है। यह व्यक्ति ख़ून करने पर उतारू है, और यदि हम न आये होते, तुम अकेले ही होते तो तुम्हारी खोपड़ी से ख़ून बरसता होता।

जीवन ने सुजान की आँखों में आँसू देखे तो उसका सिर नीचा होगया। वह यह भली भाँति समझ गया था कि अब छूटना मुश्किल है। गड्ढे में गिर कर जब होश आता है तभी उसकी गहराई का भय विदित होता है। अब जीवनसिंह को ज्ञान हुआ कि ग़लती मैंने ही की, क्यों तो नहाया और क्यों फिर बूँदें उसके घड़े पर डालीं? वह चुप होगया। पुलिस के आने और जीवनसिंह के पकड़े जाने का समाचार सबको मिला। ख़ुशी किसी को न हुई, सबके मन जैसे मर गये। जीवनसिंह की स्त्री हेम भी द्वार पर आ खड़ी हुई। अभी अपने पति का आतङ्क देखकर उसकी छाती राजपूतनियों की भाँति गर्व से फूल उठी थी। किन्तु वह यह न समझ पाई थी कि जीवनसिंह क्रोध में इतना पागल हो गया है। पर इससे क्या, क्या सुजान उसे समझा न सकता था? पुलिस को बुलाने की क्या ज़रूरत थी? उसका सिंह जैसे मार डाला गया हो। अपने

पति को अपनी आँखों के सामने बेड़ियों में जकड़े जाते वह कैसे देख सकती थी ? वह काठ बनकर रह गई। उसका सँसार उसके सामने से लोप होगया। नीचा सिर किये अपने दरवाज़े के सामने से हाथों में हथकड़ी पहने सिपाहियों के बीच में उसने अपने पति को जाते देखा। वह और न सह सकी। एकदम घर की किवाड़ें बन्द कर चीख मारती हुई भीतर को दौड़ी। बदहवास, अपने मुँह में उसने कपड़ा ठूँस लिया और आँगन में छाती के बल गिर पड़ी।

ओह, मुहल्ले में उसके पति का अनादर ! उसे अपने मुख पर कालिख पुती हुई प्रतीत हुई। उसे अपने पति पर क्रोध आया। क्यों न उन्होंने मुझे बतलाया कि वे लाठी लेकर मारने जा रहे हैं ! आह, कहीं मैं ही समझदार होती, क्यों न उनकी ख़बर रखती, क्यों न उन्हें जाने से रोकती ? उसे ख़याल आया, सारा मुहल्ला उन्हें धिक्कार रहा होगा। प्रमिला तो आज घी के दीपक जलायेगी, घी के दीपक ! उसकी आँखें उद्दीप्त हो उठीं। यह सब उसी कलमुँही प्रमिला की करतूत है, उसी ने यह विष-बीज बोया है। क्रोध में मनुष्य का मन एक दायरे में चलता है। और हर हालत में उसका केन्द्र वही "अहं" होता है। हेम प्रमिला के नाम से सिहर उठी—ओह ! यह विचार उसे असह्य था कि वह जब ऐसे रोये, प्रमिला हँसे और घी के दीपक जलाये। हमारे मन का भ्रम कितना भयानक होता है। औरों की अपेक्षा हमारा स्वयम् का भ्रम हमारा सबसे बड़ा शत्रु है। काश हेम भी यह जानती होती

कि प्रमिला इस काण्ड से प्रसन्न नहीं। उसके घर में दीपक नहीं जल रहे, काश कि वह जानती कि जब हेम इस प्रकार दुःख दग्ध छटपटा रही थी और प्रमिला को कोस रही थी, उस समय साध्वी प्रमिला अपने ठाकुर के द्वार पर खड़ी हो आँखों में आँसू भरे यह विनती कर रही थी—भगवान्! हमसे ग़लती हुई है। हेम की दुःख और पीड़ा मुझे मिले। भगवन् हमारे पापों को क्षमा कर। तू दण्ड देले पर एक स्त्री को मत रुला। हे ठाकुर! ऐसा कर कि हमें सद्बुद्धि आवे।

पर ये बातें हेम तक नहीं पहुँची, न हेम का निश्चय ही प्रमिला को मालूम हुआ। जिसका आरम्भ ग़लती में हुआ उसका अन्त सही हो सकता है क्या?

× × ×

वह भयानक रात्रि थी। अट्टालिकाओं के उस दुर्ग में तारों का क्षीण प्रकाश भी न पहुँच पाता था। उस घटना से क्षुब्ध सभी मन मारे अपने अपने घरों में सोये हुए भयानक स्वप्नों के ताने-बाने बुन रहे थे। गली से दूर उस अन्धकार में गड़गड़ाती सी कभी कभी दूर के कुत्तों की भूँक सुनाई पड़ जाती थी। चौक के गुम्बज की घड़ी से एक घण्टे की आवाज़ गली तक आते आते विलीन होगई। उस "एक" की गूँज के साथ ही जीवनसिंह के घर का एक द्वार खुला और एक छाया सी निकली। वह सुजान के घर की ओर बढ़ती चली गई और थोड़ी देर में वह भयानक अग्नि में परिणत होकर हू हू करने लगी।

सुजान के मकान में आग लग गई थी। किवाड़, चौखट, मेज़, कुर्सी, कपड़े-लत्ते यहाँ तक कि ऐसा प्रतीत होने लगा कि ईंटें भी जलने लगी हैं। भभक भभक कर आग होली खेल रही थी, निर्दयता और नृशंसता पूर्वक। सब लोग मध्य-रात्रि की नींद ले रहे थे। उनकी इस असावधानी का अग्नि ने लाभ उठाया। वायु भी दुर्भाग्य से तेज़ हो गई और सुजान तथा प्रमिला के मकान से लपटें निकल निकल कर दूसरे मकानों को घेरने लगी। सब घर पास पास थे। हेम का मकान भी पड़ौस में ही था। हवा के झोंकों ने आग के स्फुलिंग उसके घर में भी पहुँचा दिये और वह भी धधकने लगा।

अब एक दम हल्ला मचा। यह नहीं कहा जा सकता किसने आरम्भ किया, या सभी एक-दम उठ पड़े और चिल्ला उठे। सब ओर से हल्ला हुआ। पुलिस को ख़बर दी गई। चुँगी को सूचना पहुँचाई गई। जिस नल ने मुहल्ले में यह आग लगाई थी, वह बुझाने के लिये पानी देने लगा। शहर के स्वयं-सेवक तथा बालचर भाग भाग कर वहाँ पहुँचे। पुलिस भी आगई। सामान बचाने का उद्योग भी किया गया। फ़ायर ऐञ्जिन भी आया। बड़ी कठिनाई से घण्टों तक लगातार युद्ध के पश्चात् आग क़ाबू में आ सकी। हवा का रुख़ प्रमिला के मकान से हेम के मकान की ओर था। प्रमिला का तो सामने का भाग ही जला पर हेम का सारा मकान भस्म होगया। अनेकों आदमी अधजले हो गये।

स्काउट उन लोगों को अस्पताल ले गये। गनीमत यह हुई कि मरा कोई नहीं।

हेम दूर खड़े खड़े इस काण्ड को देख रही थी। उसके हृदय में जो आग धधकी थी वह मकानों में ऐसी आग की धधक देखते ही स्तब्ध होगई। जिसका आदि जल की बूँदों से हुआ वह आग की भस्म में समाप्त होगा ऐसी कल्पना भी कोई नहीं कर सकता था, पर वह तो हो ही गया।

प्रमिला की पुकार उसके ठाकुर ने सुनी या न सुनी किन्तु इस भीषण काण्ड को देखकर सबको सुमति अवश्य आगई। सबने उससे शिक्षा ली।

× × ×

मुहल्ले के अधिकाँश मकान खण्डहर होगये। अनेकों मनुष्य दरिद्र होगये। उनका सब कुछ भस्म हो गया। उन खण्डहरों पर एक शिला-लेख लगा आज भी दीखता है। उसमें लिखा है:—

"नागरिक नियमों का ठीक पालन न करने और अपने उत्तरदायित्व तथा कार्यों के फल को न समझने का जो भयानक परिणाम होता है वह ये काले खण्डहर बताते हैं।"

———

४

मृत्यु पर विजय

(१)

और उसने निश्चय कर लिया कि प्राणों का मोह छोड़ देना होगा। जिन प्राणों को स्वतन्त्र साँस लेने का अवकाश नहीं था, जो मातृ-पितृ हीनता के अभिशाप में ग्रस्त अपने चाची-चाचा के लिये जीवन-भार बन रहे थे उन्हें रखकर क्या करे—

यह नहीं कि सुरेश बेपढ़ा था, और इस लिये स्थितियों को समझ न पाता हो। यद्यपि वह किसी कालेज में शिक्षा न पा सका था फिर भी उसे पढ़ने में रुचि थी और घर पर ही उद्योग

करके उसने अपना बहुत विस्तृत ज्ञान कर रक्खा था। किन्तु वह उन समझदार लोगों में से था जो सफलता को महत्व देते हैं, विफलता की अपेक्षा मृत्यु का आलिंगन स्वीकार करते हैं। जिनकी दृष्टि में जीवन भौतिक व्यापार है और उसका इतना ही मूल्य है जितना किसी वृक्ष के उग आने का अथवा फूलों के खिल जाने का, इस लिये यदि मृत्यु बुलाली जाय तो हर्ज क्या ?

वस्तुतः वह स्वर्ग-नरक, लोक-परलोक और इनका भय और प्रलोभन दिखाकर मनुष्य को कार्य में प्रवृत्त करने वाले धर्म जैसी बातों को भी स्वीकार न करता था। अतः साधारणतः मनुष्य को स्वयं मृत्यु का कवल हो जाने से रोकने वाली जो पाप के भय की प्रेरणा होती है वह उसमें नाम मात्र को न थी; उसका जीवन असफलताओं का ढेर था। माता-पिता का न होना उसके जीवन की सबसे पहली असफलता थी क्योंकि इसने एक तो उसके मन में एक स्वाभाविक पक्षपात का विष उत्पन्न कर दिया था। दूसरे उन्नति के लिये जिन सुविधाओं की आवश्यकता होती है उनका उसके लिए दुर्भाव उपस्थित कर दिया था। वह धनी माँ-बाप का पुत्र नहीं था, इसीलिए चाचा-चाची के लिये बोझ था। चाचा-चाची उसके खाने-पिलाने में जितना व्यय करते थे उससे अधिक वे उसकी सेवाओं से वसूल कर लेते थे। फिर भी उस पर अहसान किया जाता था कि लाला पाल-पोस कर बड़ा किया है, नहीं कोई बात पूछने वाला न होता। घर में वह एक क़ैदी से बदतर था। अपनी अपेक्षा वह उन नौकरों को अच्छा समझता

था जो मालिक से न बनने पर किसी दूसरी जगह जा सकते थे। यहाँ उसे सब कुछ चाचा-चाची की इच्छा से करना होगा। वह एक क़दम बिना उनकी मर्ज़ी के नहीं रख सकता। उसके चौबीसों घण्टों पर चाचाजी का अधिकार था। एक-एक मिनट का हिसाब उसे देना पड़ता था। वह जब कभी अपने नौकर को अपने मन मुताबिक चाहे जहाँ घूमते-फिरते देखता था तो हृदय में एक विद्रोह पैदा हो जाता। बरबस उसके हृदय में यह भाव पैदा हो जाता था कि मुझे घर का जितना काम करना पड़ता है उतना करने के लिये १०) रुपये और ख़ुराक से कम में कोई आदमी न मिलेगा, और मेरे ऊपर चाचा जी सब मिलाकर ६) रु० ख़र्च कर रहे होंगे, उस पर यह शान! वस्तुतः हमारे घरों का जो मुख्य आधार प्रेम और करुणा है वह आज सर्वथा लोप हो गया है। प्रेम में विनिमय का भाव हो गया है, शोषकों का नैतिक आदर्श ग्रह-जीवन में समाता चला जा रहा है। जो बड़ा है, घर का मालिक अथवा मालकिन है, वह अपने छोटों का सब प्रकार शोषण कर अपना सुख बढ़ाने की चिन्ता में रहते हैं। यह शोषण उस अवस्था में और बढ़ जाता है जब सुरेश जैसा दीन-हीन प्राणी किसी के पल्ले पड़ जाता है। आह! सुरेश सोचता कि बालक राष्ट्र की सम्पति क्यों न समझा जाय? क्यों न समाज बालकों की रक्षा का भार अपने ऊपर ले? क्यों न माता-पिता, चाचा-ताऊ, भाई, गुरु के उनके ऊपर होने वाले अस्वाभाविक अत्याचारों से उनको समाज बचावे। सुरेश सोचता है कि मेरा जैसा जीवन

नष्ट हुआ है वैसा न जाने कितनों का हो रहा है और होगया है। उसे याद आया कि दीनानाथ के जब माता-पिता थे और उसे सब सुविधाऐं थीं तो वह कितना तेज़ था, कैसी अच्छी कविताऐं बना लेता था, कैसे अच्छे चित्र बना सकता था ? उसके माता-पिता प्लेग में मर गये और तबसे वह कैसा श्रीहीन रोटी के टुकड़े टुकड़े के लिये तरस जाने वाला हो गया है ! उसकी बुद्धि कुण्ठित हो गई है। नहीं, बालकों पर राष्ट्र को सबसे पहले ध्यान देना होगा, पर राष्ट्र ध्यान देगा कैसे ? जब तक हम बालक हैं तब तक कैसी भी शक्ति और योग्यता हममें आ नहीं पाती कि अपनी बात किसी तक पहुँचा सकें और जब बालक नहीं रहेंगे, तब एक तो हम बालक की व्यथा को भूल जायँगे, उस पर किए गये अत्याचारों को प्रेम का मधुर फल समझेंगे। दूसरे हमारी बातों में तब उतना ज़ोर भी न रहेगा कि उसे कोई सुने। इन सब बातों ने सुरेश को निराशावादी बना दिया। अब उससे और नहीं सहा जा सकता—

उसने अपने कमरे में दृष्टि दौड़ाई, एक टूटी-फूटी खाट जो चाचा-चाची के किसी भी काम न आ सकती थी उसमें पड़ी हुई थी, उस पर एक फटी दरी थी। एक थेगरी से भरी ओढ़नी की चद्दर थी। कई जगह अब भी फटी हुई थी; वह उसे मरम्मत कराने को चाची को देने का साहस न कर सका था। पहले कई बार ऐसी अच्छी चद्दर को फाड़ डालने के अपराध में उस पर फटकार और मार पड़ चुकी थी। उस कमरे में कुछ किताबें थीं

जो उसके मित्रों ने उसे दे रक्खी थी। उसकी आँखों में जल भर आया। उसने अपने मित्रों को पत्र लिख दिया कि वे अपनी पुस्तकें ले जायँ। अब उसे उनकी आवश्यकता नहीं रही। वह घर छोड़ने को तैयार हो गया। उसे प्रतीत हुआ कि इस घर में उसे प्रेम करने वाला कोई था तो वह यह उसका कमरा ही था। आह, कैसी विषम वेदनाओं से पीड़ित होने पर इस कमरे ने उसे अपनी चार दीवारी के आलिंगन में भरकर संसार के क्रूर अत्याचारों से बचाया है! रात रात भर कैसे ये दीवालें उसकी करुण कथा सुनती रहीं हैं! कैसे उसके दुखी आँसुओं को इस भूमि ने चाव से पीलिया है और किसी पर प्रकट तक नही होने दिया है! जब उसे कहीं भी अपने लिये स्थान रहते नहीं दीखा है; घर के चौके में, आँगन में जब वह जाते भयभीत रहा है तब कैसे इसने प्रेम से अपने अन्दर बुलाया है! इसके साथ मेरा ममत्व जो जुड़ा हुआ है। पर उसे ध्यान आया कि यह ममत्व भी तो चाचा जी की कृपा से मिला हुआ है। इसका अन्तिम आधार तो उनकी इच्छा ही है। वे न चाहें तो यह भी उसका कैसे हो सकता है। आह! विरक्ति से उसका रक्त सूख गया। उसका अपना दुनियाँ में कोई नहीं। वह नहीं चाहता था कि इस जड़ के ममत्व में जो थोड़ा रस है उसे भी वह सुखा डाले किन्तु चाचा की मूर्ति उसकी आँखों में छा गई और उसने सब कुछ सुखा दिया। नहीं मेरा कुछ नहीं। अधिकार हीन, दीन, सबका गुलाम, अपने लिये भी बोझ! नहीं मैं रहूँगा नहीं, अब और

रहने से लाभ क्या ? उसके रोम रोम में विरक्ति भर गई, वह घर छोड़ कर यमुना जी की ओर चल दिया। उसके हृदय का सूखा रूखा पन मृत्यु-पिपासा बन यमुना के तरल जल की ओर खींचे लिये जाने लगा।

सन्ध्या हो रही थी। वृक्षों की छायाएँ लम्बी बड़ी होती हुई अपने रूप को अन्धकार में परिणत किये दे रहीं थीं। सूर्य अस्त हो चुका था, उसकी लालिमा मात्र पश्चिमी क्षितिज को रँगे हुए थी, वह धीरे धीरे क्षीण से क्षीण तर होती जारही थी। सुरेश भी इधर न जाने कितना लम्बा सफ़र तय कर नैराश्य का अवसाद लिये सुख के सूर्य का अस्त देखता हुआ मृत्यु की बड़ी लम्बी छाया के अन्धकार की ओर डग बढ़ाये चला जा रहा था। किन्तु अब उसे अपने हृदय में एक अलौकिक परिवर्तन सा दीख रहा था। जिस दुःख से उसने घर छोड़ा था और मृत्यु के आलिंगन का निश्चय किया था, वह दुःख जैसे सिमटकर एक गैंद बन गया था और वह उल्लास से उसमें किक लगाता हुआ आगे बढ़ रहा था। यह उल्लास उसमें कहां से आया ? आज पहली बार वस्तुतः वह कोई स्वतन्त्र निश्चय कर सका था और उस निश्चय के अनुसार कार्य करने के लिये तत्पर हो चुका था, आज पहले पहल उसे आत्म-निर्भरता का आनन्द मिला था। क्या उसी का यह उल्लास था ? और इसमें कितना सुख है। चारों ओर उसे अपने हृदय के इस परिवर्तन की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। पहले कुछ प्रबल और अब तो बहुत ही प्रबल थी। जैसे कोई कह रहा था—

"स्वतन्त्रता का अनिवचनीय आनन्द स्वतन्त्र रहने वाला ही जान सकता है। जो गुलाम है, जिसका मस्तिष्क और शरीर अप्राकृतिक और अस्वाभाविक बन्धनों से जकड़ा हुआ है, उसका हृदय मर जाता है, उसे वैराग्य और अन्धकार घेर लेता है। उसके जीवन का उल्लास नष्ट हो जाता है, और उसकी उन्नति अवरुद्ध हो जाती है। सुरेश भी ठीक ऐसा ही तो सोच रहा था, पर उसने देखा कि यह उसके विचारों की प्रतिध्वनि नहीं। वह न जाने किस शहर में रेल से और पैदल मीलों का फासला तय कर यमुना किनारे आ पहुँचा है, और यमुना की रेती में होने वाली एक विशाल सभा उसके सामने है। उसने जो शब्द सुने हैं वे एक महोदय के भाषण के हैं। थोड़ी देर वह वहीं खड़े रहकर वक्ता महोदय की बात सुनेगा, अवश्य सुनेगा! वह घर छोड़ चुका है, चाचा-चाची से नाता तोड़ चुका है फिर उसे भय क्या? मृत्यु कोई चाची की रसोई का भोजन नहीं कि बँधे वक्त पर न पहुँचे तो भय हो कि भोजन के स्थान पर फटकार और मार मिलेगी; उस मृत्यु को तो जैसे इस क्षण वैसे ही और दूसरे क्षण भी प्राप्त किया जा सकता है। अतः सुरेश यह व्याख्यान सुनेगा ही, उधर वक्ता महोदय कह रहे थे—

"किन्तु स्वतन्त्रता का आनन्द उच्छृङ्खलता में नहीं। स्वतन्त्रता मनुष्य के अधिकार और कर्तव्य के समझौते पर निर्भर करती है। जो व्यक्ति केवल अधिकार रखता है और उसके सहजात कर्तव्यों को स्वीकार नहीं करता वह शोषक बन जाता है,

वही दूसरों को गुलाम बनाता है। उधर जो व्यक्ति अधिकारों की कोई चिन्ता नहीं करता केवल कर्तव्यों के ढेर को अपने सामने देखता है वह वस्तुतः कर्तव्य और अकर्तव्य समझ ही नहीं पाता। वह जिसे कर्तव्य कहता है, वह दूसरों का आदेश होता है, और उनकी ख़ुशामद उसका कर्तव्य हो जाता है। ऐसा व्यक्ति गुलाम हो जाता है। जिसे कर्तव्य करने हैं उसके पास अधिकार होने चाहिये। जिसके पास अधिकार हैं उसके कर्तव्य होने आवश्यक हैं। न केवल अधिकार स्वतन्त्रता है, न कर्तव्य। इन दोनों के समझौते के अलावा जो चीज़ है वह या तो उच्छृङ्खलता है, या गुलामी।

और हम भारतवासियों को जितना गुलामी का विरोध करना है उतना ही उच्छृङ्खलता का। हमें स्वयम् अपने अन्दर अधिकारों और कर्तव्यों का समन्वय करना होगा और दूसरों को भी ज्ञान कराना होगा। उन्हें भी इस मानवीय आवश्यकता को समझाना होगा। आज अनेकों संस्थाएं हैं—कुछ राजनीतिक, कुछ धार्मिक, कुछ सामाजिक, कुछ शिक्षा-सम्बन्धी, किन्तु अभी हमें अपने अन्दर नागरिक संस्थाओं का अभाव प्रतीत होता है। ऐसी नागरिक संस्थाएं जो अपने अन्दर ही अपने व्यक्तियों को शान्ति-व्यवस्था के लिये, समाज की वैध प्रतिष्ठा के लिये पारस्परिक अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान करायें और उन्हें करने या समझने के लिये एक शक्ति उपस्थित करें। हम देखते हैं हमारे पढ़े लिखे नवयुवक अपनी शक्तियों का अपव्यय कर रहे हैं। हमारे नगर निवासी नागरिक कर्तव्यों को भूले हुए हैं; अधि-

कारी वर्ग तो अधिकारी हैं ही ! तब कल्याण का कोई मार्ग तभी दीख सकता है जब युवक नागरिक संस्थायें बनायें। संसार के सारे संघर्ष आज संस्थाओं में विभाजित होकर ही चल रहे हैं। युवकों को उचित है वे इस अवसर पर आगे आवें और नागरिक संस्थायें बनायें। सरकार हमारे सब काम नहीं कर सकती। हमारे पारस्परिक व्यवहार का सौन्दर्य वह नहीं बना सकती। बहुत कुछ हमारे अपने लिये छूटा हुआ है। अतः यदि नवयुवक चाहें तो आज से ही उस संस्था का आरम्भ कर दिया जाय।—

भाषण से नवयुवकों में बड़ा जोश आगया था। सच्चाई उनके हृदय में पैठ रही थी। एक के बाद एक, अनेकों युवकों ने अपने नाम दिये। इस जोश के वातावरण ने सुरेश के हृदय से मृत्यु का अवसाद दूर कर दिया। आत्म-निर्भरता का उल्लास इन शब्दों से जोश में परिणत होगया। उसने भी अपना नाम लिखा दिया।

× × ×

शहर में एक युवक-छावनी बनाई गई; और सुरेश उसका सञ्चालक नियुक्त हुआ।

(२)

सुरेश की तत्परता से नागरिक-मण्डल अत्यन्त शीघ्र ही बलवान हो उठा। युवकों की छावनी में दाखिल होने के लिये रोज ही अनेकों प्रार्थनापत्र आने लगे। शहर से बाहर एक बड़ी

धर्मशाला छावनी के लिये दे दी गई। धन का भी अभाव न रहा। मज़दूरों ने, पास पड़ौस के किसानों ने यदि थोड़ा थोड़ा दिया तो व्यापारियों ने मन माना दिया। झोली लिये जिधर भी सुरेश निकल जाता था, उधर ही उसकी जेबें भर जातीं! सब समझने लगे थे कि दान का यही सदुपयोग है। नागरिक-मण्डल ने युवकों की सैनिक-शिक्षा अनिवार्य करदी। युवक-छावनी के सदस्यों के लिए सख्त कार्यक्रम बनाया गया। उसके शरीर की पुष्टि के लिये व्यायाम और उचित भोजन का प्रबन्ध था। मानसिक उन्नति के लिये व्याख्यानों, पुस्तकालयों और वाचनालयों का प्रबन्ध किया गया। इसके साथ ही उन्हें स्वावलम्बी बनने के लिये विविध वस्तुओं का निर्माण करना सिखाया गया। उनके हाथ की बनी वस्तुओं के लिये बाज़ार में एक दूकान स्थापित की गई। युवक-छावनी में अधिकारों को विभिन्न विभागों में विभाजित करके उनके लिये अलग अलग मन्त्री नियुक्त कर दिये गये। प्रत्येक मन्त्री के आधीन युवक-सेना का एक दल था। युवकों के नागरिक आदर्शों का प्रचार करने के लिये "नागरिक" नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकाला गया। वह नागरिक संस्कृति का प्रोपैगेंडा करने वाला पत्र था। इस नागरिक संगठन ने समाज के सभी अँगों पर अध्ययन किया, प्रत्येक अँग के अधिकार और कर्तव्य की व्याख्या की। धर्म, अर्थ, समाज, राजनीति सभी क्षेत्रों में उनका काय होने लगा। युवक दल बलशाली होगया।

उन्होंने मद्य-निषेध का प्रोग्राम बनाया और जैसे ही पत्रों में

उसकी सूचना प्रकाशित हुई लोगों ने अपनी दूकानें बन्द करदीं। नागरिकों ने समझा कि जितना रुपया हम इस विषय में डालकर अपने स्वास्थ्य को ख़राब करते हैं, उतने से हमारे जीवन का रुतबा बढ़ सकता है। हम पतित होने से बच जाते हैं। लोग कहने लगे कि—भाई, हम तो पहले ही कब अच्छा समझते थे, पर आदत से मजबूर थे। हुड़क अब भी आती है, पर अब युवक-सेना से कैसे पार पड़ेगी। युवकों की पहुँच घर घर में थीं। माताऐं-बहिनें इन देश के सैनिकों की पीठ ठोकती थीं। बहिनों के प्रोत्साहन में बिजली होती है। युवक अपने पवित्र कर्तव्य के लिये कमर बाँधकर अड़ जाते। यदि किसी को भी ग़लत रास्ते जाते देखते तुरन्त उसके सुधार का परामर्श करते।

शिक्षा-प्रसार का प्रश्न हाथ में लिया तो सारा नगर कुछ काल में ही सुशिक्षित कर दिया। इस प्रकार जिन समस्याओं को भी हाथ में उठाया सफलता पाई। यह दीख रहा था कि नागरिक भाव फैल रहे हैं। सब एक दूसरे का आदर करना सीख रहे हैं। सब अपने अधिकारों और कर्तव्यों को समझने लगे हैं।

सब ओर ऐसा ही सुख-सौरभ बरस रहा था कि प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषद् के चुनाव की चर्चा आरम्भ हुई। और उसके साथ ही हिन्दू मुसलमानों का सवाल उठ खड़ा हुआ। सुरेश ने "नागरिक" पत्र में स्थिति को ठीक बनाने के लिये एक लेख लिखा—

१६३५ ई० के गवर्नमेंट आफ़ इण्डिया एक्ट में चुनावों का विधान करते हुए हिन्दू और मुसलमानों का प्रथक और साम्प्रदायिक आधार पर निर्वाचन करना निश्चित किया गया है। यह भारतीय राष्ट्र को नष्ट-भ्रष्ट करने का कुशल प्रयत्न है। इससे चुनावों की लड़ाइयाँ सिद्धान्तों की लड़ाई न रहकर सम्प्रदायों की लड़ाई रह जायगी, और हिन्दू हिन्दुओं के अर्थ में, मुसलमान मुसलमानों के अर्थ में चुनाव में लड़ेंगे। भारतीय के अर्थ में चुनाव न लड़ा जायगा। फल इसका गहरा होगा। हिन्दू अपनी जगहों की रक्षा के लिये हिन्दुत्व की रक्षा का प्रश्न बनाये रखेंगे। मुसलमान मुसलमानियत का। इससे दोनों जातियों में मेल का कभी प्रश्न उपस्थित न हो सकेगा। ये दो जातियाँ लड़ लड़ कर नागरिक शान्ति में विघ्न डाला करेंगी। राजनैतिक उन्नति असंभव हो जायगी। घर में ही दो युद्ध-सन्नद्ध दलों के कारण नैतिक, मानसिक अथवा वैज्ञानिक उत्कर्ष के लिये अवकाश न रहेगा। परस्पर विश्वास उठ जायगा। जो पड़ौसी और भाई हैं वही साम्प्रदायिक प्रश्न पर शत्रु और प्राणघातक बन जायँगे। पड़ौसी धर्म का पालन करना कठिन होगा कोई भी नागरिक अधिकार सुरक्षित नहीं रह सकेगा। बाहरी शक्ति की अपेक्षा करनी होगी, और इसका परिणाम होगा अनन्त गुलामी। हमको इसलिये उचित है कि हम इसके ख़तरे से बचने का उपाय ढूँढें। एक बड़ी अच्छी विधि यह हो सकती है कि नगर के सभी मुसलमानों और हिन्दुओं की एक सार्वजनिक सभा हो, उस सभा द्वारा अपने यहां

से चुनाव में जाने वाले गिनती के मुसलमानों और हिन्दुओं का नाम तय कर दिया जाय। सब लोग सम्मिलित वोट दें। जिन मुसलमानों व हिन्दुओं का नाम आवे वही चुनाव के लिये अपना नाम दें। फिर उन्हें एक के अनुसार चुन लिया जाय। या सरकारी चुनाव से पहले नागरिक लोग सम्मिलित निजी चुनाव पहले कर डालें और जिनको बहुमत प्राप्त हो वही चुनाव में खड़े हों। इस प्रकार उस एक का दोष दूर हो जायगा और काग़ज़ पर प्रथक निर्वाचन का विधान होते हुए भी आत्मा सम्मिलित चुनाव की हो जायगी। फल यह होगा कि हिन्दू मुसलमानों का पारस्परिक सम्बन्ध घनिष्ठ होता रहेगा—

इन पंक्तियों को पढ़ते ही एक अद्भुत सी लहर पैदा हो गई। सभी समझदारों को यह बात पसन्द आई। किन्तु मौलवी फ़कीरुद्दीन को यह बात नहीं रुची। वे नागरिक-मण्डल और युवक-छावनी के कार्यों को भी सशङ्कित दृष्टि से देखा करते थे। वे एक थे। उन्हें अपने विचारों के समर्थक कम लोग मिलते थे। वे चाहते थे कि इस बार चुनाव में मैं चुना जाऊँ। पर मैं चुना कैसे जाऊँ? हिन्दुओं में मुझे कोई जानता नहीं, उन क़ाफ़िरों से मुझे घृणा है। मुसलमानों में मुझे जानते हैं, किन्तु मियाँ मुहम्मद नवी को मुसलमान और हिन्दू दोनों ही जानते हैं। इन नवी साहब को क़ुरान पर मुतलक़ यक़ीन नहीं। यदि सब मिलकर राय देंगे तो नवी साहब हो जायँगे। मैं न हो सकूँगा। तब कैसे हो—और उन्होंने विधियाँ सोचना आरम्भ कर दिया।

एक दिन उन्होंने मुसलमानों को एक बड़ी दावत दी। उसमें बाहर के एक मौलाना फ़तह मुहम्मद बुलाये गये। मौलाना फ़तह मुहम्मद ने व्याख्यान में बतलाया कि हिन्दुओं की तादाद ज्यादा है और वे इस कोशिश में हैं कि मुसलमानी सभ्यता और संस्कृति को नष्ट करदें। हिन्दुओं के सब काम नफ़रत से भरे हुए हैं। वे आपके हाथ का छुआ पानी नहीं पीयेंगे, पान नहीं खायेंगे। आपकी छाया को भी नापाक़ समझेंगे। यह नागरिक-मण्डल है। वह भी कितना बड़ा हिन्दुओं का प्रोपैगेण्डा है। आप लोग भोले भाले हैं। ये काँइयाँ हिन्दू तुम्हें मूर्ख बना रहे हैं। उनका बहुमत मुसलमानों में से उसी आदमी को मिलेगा जो उनका भला करेगा। जो उनका भला न करेगा उसे वे राय क्यों देंगे? और उनके भले का अर्थ है मुसलमानों की हानि। ऐ मेरे भोले भाले दोस्तो, इस ठगौरी में मत आओ। क़ाफिरों का कभी विश्वास मत करो। यह देखो, सभा का नाम रक्खा हैं "नागरिक-मण्डल", मैं पूछता हूँ इसमें आपकी उर्दू की कितनी क़द्र है। आपकी ज़ुबान के कौन से शब्द हैं। आपकी ज़ुबान को मिटाकर ये लोग हिन्दी को तुम पर लादना चाहते हैं। कुफ्र है, जो भाषा बुतों अवतारों के नापाक नामों से भरी हो उसका बोलना भी पाप! भोले भाइयो, धोखे में मत आना—

फ़तह मुहम्मद साहब चले गये, पर विष का बीज छोड़ गये। विष धीरे धीरे फैलता है। वह फैला। कुछ मुसलमानों पर फ़तह मुहम्मद का प्रभाव पड़ा। वे नागरिक-मण्डल को शक की दृष्टि

से देखने लगे। उसमें हिन्दुओं का रँग देखने लगे। तरह तरह की अफ़वाहें फैलने लगीं—

सुरेश यह चाहता है कि ऐसे मुसलमान को राय दी जाय जो मन्दिर को कुछ दान दे। नहीं, हिन्दुओं ने सोच रखा है कि मुसलमानों को धीरे धीरे हिन्दी पढ़ाकर रामायण पढ़ने को दी जाय। हिन्दू चाहते हैं कि मुसलमान गाय की क़ुर्बानी नहीं कर सकें, और जो मुसलमान उनकी इस बात को मानेंगे उन्हें ही वोट देंगे।

मनमुटाव बढ़ता गया। मुसलमानों को हिन्दुओं की बातें बुरी लगने लगीं। वे उन्हें शत्रु समझने लगे। परस्पर अविश्वास बढ़ने लगा। नागरिक-मण्डल को पक्षपात की आधार-शिला पर खड़ा देखा जाने लगा। सुरेश से यह सब कुछ छिपा नहीं था। युवक-छावनी में भी यह सवाल पैदा हो गया था, और मुसलमान धीरे धीरे कम होने लगे थे। इस वर्ष एक बड़ी कठिनाई यह आ पड़ी थी कि होली और मुहर्रम एक साथ आ पड़े थे।

एक दिन एक बारात निकली। नमाज़ का वक्त था, बरात बाजा बजाते बजाते मसजिद के सामने से निकली। मुसलमानों ने कहा—वे नमाज़ पढ़ रहे हैं बाजा बन्द करदो। लोगों ने कहा—भाई इसमें क्या हर्ज है। नमाज़ तुम इतनी बड़ी मस्जिद में पढ़ रहे हो। तुम नमाज़ पढ़ो, हम बरात निकाल ले जायँगे। किन्तु मुसलमान न माने! न माने! बाजा तो बन्द कर दिया गया

किन्तु गाँठ गहरी बैठ गई। यह इसी साल नई बात क्यों? मौलवी फ़कीरुद्दीन साहब ने कहा—देखा, हिन्दू तुम्हारे साथ क्या करने को तैयार हैं? वे तुम्हें शान्तिपूर्वक ईश्वर की इबादत तक नहीं करने देते। इसी के दूसरे दिन सुना गया कि पूर्व के कोने के शिवजी के मन्दिर में किसी ने गाय काट डाली है। हिन्दू सुनकर स्तब्ध रह गये। उन्होंने हल्ला मचाना शुरू किया। यह काम किसी मुसलमान का किया हुआ है। इस घटना ने हिन्दुओं के दिल में मुसलमानों के प्रति घृणा पैदा करदी। मेल का जो पौधा अभी कच्चा था वह कुम्हिला गया। सुरेश हतबुद्धि था। उसे सब कुछ मिटता सा दीख रहा था। उसके प्रयत्नों का फल उलटा हो रहा था। उसकी बातों का अर्थ कुछ का कुछ लगाया जाता था। वह जिनको मिला कर बैठना चाहता था वही भाग जाते थे।

मुसलमानों के अखाड़े तैयार हो रहे थे। हिन्दुओं में भी सुस्ती न थी। कोई भी अपने धर्म और संस्कृति को नष्ट नहीं होने देगा। हर एक का हृदय भावी आशङ्का से भयभीत था। पारस्परिक विश्वास उठ गया था।

आख़िर होली आगयी और साथ ही मुहर्रम आगये। और जो इतना स्पष्ट विदित हो रहा था वह हो गया, यानी हिन्दू-मुसलमानों में लाठी चल गई। एक कोने में एक साधारण बात पर हाथापाई हुई थी। एक हिन्दू मूँगफलीवाले ने एक मुसलमान

को एक पैसे की मूँगफली दीं और पैसा माँगा। इस पर मियाँजी नाराज़ हुए और एक चपत जमादी।

इस पर कई मुसलमान टूट पड़े। लाठियाँ चल गईं। सवाल साम्प्रदायिक हो गया। जो वहाँ मिलता मार डाला जाता। इसी सम्बन्ध में मुसलमानों की एक बड़ी सभा हुई। उसमें इस बात पर बड़ा क्रोध प्रकट किया गया। कल ताजिये निकलने थे। इस सभा में एक खबर लाई गई कि मुहल्ला चाँदियाने में हिन्दुओं ने ताजिये को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला है। उसी के पड़ौस में कुछ मुसलमानों पर रँग डाल दिया गया है—सभी का पारा चढ़ गया।

इतना हियाव, वह क्रुद्ध भीड़ हुँकार उठी। "अल्लाहो अकबर" की गगन भेदी ध्वनि उठी और वह मुसलमानों का दल का दल मुहल्ला चाँदियाने की ओर चल पड़ा।

सुरेश को खबर लगी कि हज़ारों लाठीबन्द मुसलमान मुहल्ला चाँदियाने की ओर दौड़े जा रहे हैं। एक दम उसकी आँखों में रक्तपात का दृश्य घूम गया। ओह! वह यह खून होते कैसे देख सकेगा। कैसे एक भाई को दूसरे का गला काटते देखेगा। युवक-छावनी में उस समय कोई न था। अकेला सुरेश! पर वह अवश्य वहाँ जायगा। उन्हें समझायगा। वह तुरन्त तैयार होगया और मुहल्ला चाँदियाने की ओर दौड़ पड़ा। छावनी के पास ही था। वह भीड़ से पहले पहुँच गया।

गली के द्वार पर वह खड़ा होगया। उन्मत्त मुसलमानों के

" अल्लाहो अकबर " की ध्वनि आरही थी। इधर मुहल्ले में भी ख़बर फैल गई थी। वहाँ भी लाठियों की भीड़ एकत्रित हो रही थी।

सुरेश एक ऊँची जगह पर खड़ा हो गया। मुसलमानों की भीड़ पास आगई तो उसने कहा—प्यारे भाइयो :—

भीड़ ने कहा—अल्लाहो अकबर !

सुरेश—प्यारे भाइयो, यह गज़ब न करो।

भीड़ ने कहा—" अल्लाहो अकबर, हम कुछ नहीं सुनना चाहते "। एक ने कहा—यही काफ़िर फ़साद की जड़ है। मार दो क्या देखते हो ?

दूसरी ओर से आवाज़ आई—ख़ून हो जायगा। इधर से कहा—इसके लिए तैयार होकर आये हैं।

सुरेश ने कहा—" प्यारे भाइयो सुनो। तुम आपस में भाई हो लड़ो मत। एक दूसरे को क्षमा करो, गले मिलो "। पर कौन सुनता। एक ने बढ़कर उसमें हाथ मार ही दिया। वह लड़खड़ाया, तब दूसरे ने भी हाथ चला दिया। फिर तो पचासों लाठियाँ चल पड़ीं।

मरते मरते सुरेश ने देखा कि वह मरने के लिये ही आया था। पर यमुना में डूब कर मरने से यह मरना कितना भिन्न है !

उसे लाठियों की चोट फूलों सी लगी। अन्धे साम्प्रदायिकों ने निष्ठुर प्रहारों से एक सद् आत्मा का हनन कर दिया।

अब तो हिन्दुओं की हुँकार बढ़ी। इधर युवक-छावनी के सैनिकों ने जो सुरेश का समाचार सुना तो दौड़कर घटना-स्थल पर आगये। पुलिस और फौज का भी प्रबन्ध होगया। दँगा आगे न बढ़ सका। सुरेश की आहुति ने साम्प्रदायिकता को बुझा दिया। अब तो उसके उपकार याद किये जाने लगे। जब ख़ून का नशा उतर गया तो लोगों को ख़याल आया कि उन्होंने कितनी भारी भूल कर डाली है। वे समझ गये कि उन्होंने नागरिकों की भाँति कार्य नहीं किया।

सब फूट फूट कर रोने लगे। सुरेश की स्मृति रक्षार्थ एक सभा हुई। उसमें हिन्दू-मुसलमान गले मिले और परस्पर यह प्रतिज्ञा की कि एक दूसरे का आदर करते हुए मेल से रहेंगे।

बाज़ार के चौक में सुरेश की मूर्ति खड़ी की गई उसके नीचे लिखा था—

"नागरिकता का सच्चा पुजारी

सुरेश

सब को धार्मिक स्वतन्त्रता है। पर पड़ौसी धर्म निबाहना आवश्यक है। हिन्दू-मुसलमान दोनों भारतीय हैं। उन्हें मिलकर रहना चाहिये। परस्पर आदर और विश्वास रक्खो।"

———

५

देय का दान

(१)

आज कालेज में वार्षिकोत्सव की धूम है। सजावट से वह जगमगा रहा है। अतिथियों के बैठने का अलग, विद्यार्थियों के बैठने का अलग और पुरस्कार-विजेताओं का अलग स्थान है। सभापति का आसन एक ऊँचे मञ्च पर है। उन्हीं के पास पुरस्कार-विजेता बैठे हैं। पुरस्कार-विजेता १०—१५ से ज्यादा नहीं। और उनमें सबसे शुरू में बैठा है धीरेन्द्र! वह बड़ा ख़ुश है। सबसे अधिक पुरस्कार उसे ही मिलेंगे। वह कालेज भर में सर्वश्रेष्ठ ठहराया गया है। उसे कई पुरस्कार मिलेंगे।

× × ×

पुरस्कार-वितरण होगया। उसे बहुत सी चीज़ों के साथ आठ पुस्तकें भी मिलीं। उसे सात पुस्तकों की बनावट, जिल्द, विषय सभी बहुत पसन्द आये। पसन्द नहीं आई उसे एक पुस्तक जिसका नाम था "नागरिक-शास्त्र"। वह सोचने लगा यह भी कोई विषय है? फिर इसकी शक़ल-सूरत कैसी भद्दी है। प्रकाशक यदि कँजूसी न करता तो पुस्तक कम से कम कमरा सजाने के काम तो आती। न जाने क्या सोचकर यह पुस्तक इनाम दी गई है। कहीं रद्दी में पड़ी मिल गई होगी। उसका मन किया कि उठाकर इसे सभापति जी को लौटा दे और कहदे इससे तो मैं कम क़ीमत का ही पुरस्कार लेना पसन्द करूंगा। इस समय सभापति सभा की कार्यवाही समाप्त कर रहे थे। उनका भाषण चल रहा था। अब तक का कुछ भी हिस्सा वह न सुन सका था, अनायास ही उसे सुन पड़ा।—

युवकों को अब कर्म-क्षेत्र में उतरना चाहिए। नागरिक बनने की योग्यता प्राप्त करनी चाहिए। नागरिकता का अर्थ किसी नगर अथवा गाँव का सुसंयम है। विद्यार्थी को जिस तरह डिसीप्लिन (Discipline) की अपने लिये अत्यन्त आवश्यकता है, वैसे ही समाज को भी डिसीप्लिन ज़रूरी है और यही जन-समूह का डिसीप्लिन-सँयम अथवा निग्रह नागरिकता है। बिना नागरिक शास्त्र का ज्ञान हुए आज का व्यक्ति अपूर्ण है; वह अपने कर्तव्यों का समुचित पालन नहीं कर सकता। मैं युवकों को प्रेरित करना चाहता हूँ कि वे अच्छे नागरिक बनें। अपने पड़ौसी भाइयों में

जाति पाँति का भेद मिटाकर अधिक से अधिक उपयोगी हो सकें।—भाषण समाप्त होगया। नागरिक-शास्त्र को फेंक देने का विचार विलीन होगया। बड़े चाव से उसने पहले पहल उसी पुस्तक को पढ़ा—

उसने यह जाना कि किस प्रकार समाज का निर्माण होता है, उसमें मनुष्य के व्यक्तित्व का क्या स्थान है? कैसे राजाओं और राज्यों का विकास हुआ? राज्य के दो भेद व्यवस्थापक और कार्यकारक कैसे हो जाते हैं? भारत का शासन-प्रबन्ध कैसा है? ज़िलाधीश, तहसीलदार आदि का क्या काम है? क़ानून क्या होता है? प्रजा का क्या कर्तव्य है? चुँगी और ज़िला बोर्ड क्या होते हैं?—इन सभी संस्थाओं के अध्ययन में उसका मन लग गया। पढ़ते पढ़ते एक स्थान पर कुछ पँक्तियों पर उसका ध्यान जमा रह गया।

उन पंक्तियों में लिखा था:—

"क़ानून पालन करना तो प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है ही, इसके अतिरिक्त यह समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है कि नागरिक होने के लिये ऐसे बहुत से काम भी स्वयं करने होते हैं जिनका क़ानून नहीं बना होता। किन्तु जिनके बिना नागरिकों का सुख नहीं रह पाता। उदाहरण के लिये ऐसी मामूली और निर्दोष घटनाऐं ली जा सकती हैं जैसे कि, मनुष्य के पास जब किसी दूसरे की वस्तु आजाती है तो वह उसे पचा जाना चाहता है।

उसका मालिक उस वस्तु को भूल जाता है, माँगता नहीं, और यह बिना माँगे देता नहीं।

कुछ काल में बात गई आई हो जाती है। अब ऐसा व्यवहार अनागरिक है। यद्यपि इसके लिये कोई क़ानून नहीं।

इस प्रकार किसी वस्तु को दाब कर बैठ जाने वाले को कोई सज़ा नहीं; कोई भय नहीं। और, सच्चे नागरिक की यहीं पहचान होती है। वह ऐसी किसी वस्तु पर अपना अधिकार स्वयँ ही नहीं रहने देना चाहता, जिस पर उचित रूप से वह अधिकारी नहीं।"

धीरेन्द्र ने पुस्तक में बुकमार्क लगा दिया। उसका पढ़ना रुक गया, क्योंकि उनके विचार पुस्तक से भी आगे बढ़ने लगे थे। उसने सोचा यह बात कही तो थोड़े शब्दों में गई है पर है कितनी आवश्यक। इस पर हमारी शान्ति और सुव्यवस्था कितनी निर्भर करती है। हमारे विश्वास की यही भित्ति है। मैगस्थिनीज़ ने लिखा था कि भारत में चोरियाँ नहीं होतीं, लोग झूँठ नहीं बोलते, जो चीज़ जहाँ गिर पड़ती है वहीं पड़ी रहती है और लौटने पर ज्यों की त्यों मिल जाती है। किवाड़ें बन्द नहीं की जाती है—और ऐसा असम्भव नहीं। जब तक हम ज़िन्दगी में भय से काम करना पसन्द करते हैं तब तक हम उतना ही करना चाहते हैं या उतना ही नहीं करना चाहते जितना भय है अथवा भय नहीं है। भय से काम करना निश्चय ही गुलामी मनोवृत्ति

है। हमारे नागरिक-जीवन को स्वस्थ बनाने के लिये इस बात की बहुत आवश्यकता है कि हम वहाँ भी दूसरों के अधिकारों की रक्षा करें जहां क़ानून उनकी रक्षा करने के लिए नहीं है या जहाँ क़ानून की शरण जाने वाला ही नहीं है। जो मनुष्य अपना अधिकार भूला हुआ है उसका केवल इस लिए कि वह उसे भूला हुआ है उस वस्तु पर से अधिकार न हट जाना चाहिये। यह प्रश्न बहुत स्पष्ट हल के साथ उसके हृदय में समा गया। वह सोचने लगा उसके जीवन में कितना अनियमित अधिकार रहा है! कितनों की भूल की कमज़ोरी का उसने लाभ उठाया है? उसकी पुस्तकों की अलमारी उसके सामने आगई। बड़े चाव से प्रसन्न होकर उसने देखा पहली पुस्तक थी 'होली बाइबिल'। यह पारसाल क्रिश्चियन सोसायटी से मुफ़्त मिली थी। इसकी जेकब वाली कहानी···, पर नहीं। यह दूसरी पुस्तक है Inidia's Past। ओह, यह पुस्तक उसके मित्र रामपाद गौड़ की भेंट दी हुई है, उसने पुस्तक निकाली। इसके पहले पृष्ठ पर आज भी सुगठित अक्षरों में उसके मित्र की लेखनी ने उसका नाम और भेंट लिखकर उनके सम्बन्धों को अमर कर दिया है। यह पुस्तक जैसे भारतीय यश गाथा का पोथा है वैसे ही ये अक्षर हमारी मैत्री के अटल स्मारक हैं और यह आगे की पुस्तक The Decline of The West कितनी विद्वत्ता और पाण्डित्य से पूर्ण है यह पुस्तक! एक मनुष्य इतना ज्ञान विस्तृत कर सकता है? इतिहास की समस्याओं का कैसा विश्लेषण है और आदि काल से यूरुपीय

महायुद्ध तक की स्थिति का कैसा विशद वर्णन है। मेरा कितना ज्ञान इसने बढ़ाया। मुझे पुस्तक का कितना कृतज्ञ होना चाहिए और उसका भी तो जिससे यह पुस्तक मिली·····

उसका हृदय कुम्हिला गया—किसने दी यह पुस्तक? मैं उसका कितना कृतज्ञ हो रहा हूँ,वाह क्या वरदान है? वह लज्जित हो उठा। झिझक कर कमरे में चारों ओर देखा कहीं कोई है तो नहीं। परन्तु उसका अन्तरंग उसे देख रहा था। उसका न्यायकर्त्ता उसके हृदय में ही था। "नागरिक-शास्त्र" की वह पँक्ति उसके हृदय में चमक गई।

"वह ऐसी किसी वस्तु पर अपना अधिकार स्वयं ही नहीं रहने देना चाहता जिस पर उचित रूप से वह अधिकारी नहीं"—और निश्चय ही इस सुन्दर और क़ीमती पुस्तक पर वह उचित रूप से अधिकारी नहीं। उसने दाम देकर इसे क्रय नहीं किया, उसे किसी ने पुरस्कार अथवा भेंट में नहीं दी, वह तो अपने हितैषी प्रिंसीपल महोदय से कुछ दिनों के लिये माँग कर लाया था। फिर लौटायी आज तक नहीं। उन्होंने माँगी नहीं, क्योंकि उन्हें याद नहीं रही होगी, और उसने लौटाई नहीं, क्यों कि मनमें लालच आगया। वह अपने को धिक्कारने लगा। नहीं, और आगे वह यह नागरिक अपराध न करेगा। कौन कह सकता है मेरे इस कृत्य ने अविश्वास पैदा कर कितने व्यक्तियों को प्रिन्सीपल साहब के पुस्तकालय के उपयोग से वंचित रक्खा

होगा ? यह उनकी उदारता और कृपा का दुरुपयोग है, अपने नागरिकों के साथ विश्वासघात है। उन सबको एक हानि पहुँचाने का उद्योग है। वह कहने लगा कि उसकी मति अब तक ऐसी बिगड़ी क्यों रही ? मैं धर्म नहीं मानता, ईश्वर नहीं मानता पर क्या यह भी नहीं मानता कि पारस्परिक व्यवहार शुद्ध रहने चाहिए इसलिए कि सामाजिक व्यवहार में अविश्वास और अशान्ति न उत्पन्न हो—नहीं, वह अपनी ग़लती को इसी क्षण दुरुस्त करेगा। वह एक पत्र लिखने को तैयार हुआ कि एक नौकर ने आकर कहा—

"बाबूजी, ताँगा तैयार है,और गाड़ी का भी वक्त होगया है ?"

धीरेन्द्र ने सिर ऊपर उठा कर पूछा—और कौन लोग बोर्डिंग में रह गये हैं ?

नौकर ने कहा—कोई भी नहीं रहा। सब तो सालाना जलसा होते ही रात को चले गये। केवल आप ही रह गये हैं।

धीरेन्द्र—तुम्हें पता है, अभी प्रिन्सीपल साहब हैं ?

नौकर—हमें ख़ूब पता है, वे हैं। अभी तो उनका चपरासी हमसे बोर्डिंग के बाग़ के फूल माँग ले गया है।

धीरेन्द्र—तो मिट्ठू एक काम करोगे ?

नौकर—सरकार !

धीरेन्द्र पत्र समाप्त कर चुका था। वह लिफ़ाफ़े में रक्खा और उसे नौकर को दिया और कहा—इसे तथा इस पुस्तक को प्रिंसिपल साहब के पास पहुँचा देना, आज ही। मैं घर जाता हूँ।

धीरेन्द्र ताँगे में बैठा और स्टेशन को चल दिया।

× × ×

(२)

धीरेन्द्र इस बार बिल्कुल नये भावों को लेकर अपने गाँव को लौटा। वह अपने गाँव को अब पिछड़ी दशा में नहीं देखना चाहता। वह जितने दिन भी यहाँ रहेगा गाँव के सुधार का प्रयत्न करेगा। उस पर सुधार का उन्माद सवार था। वह निश्चय का का आदमी था। वह इसे भली प्रकार समझता था कि निश्चय हीन युवक यौवन का कलङ्क है, पर निश्चय पवित्र और परिश्रम का होना चाहिये। वह ग्राम-सेवा का निश्चय कर चुका था। यह उसका एक उन्माद था। जहाँ तहाँ युवकों से मिलना, मिलकर गाँव की हालत पर विचार करना। बड़े बूढ़ों से परामर्श करना। उन्हें नई बातों के लिये राज़ी करना। वह पद पद पर देख रहा था कि काम आसान नहीं। जितनी तीव्र गति से वह चलने की सोचकर आया था उतनी गति से काम होता न दीखता था। पर वह शिथिल होने वाला न था। उसने पहले तो गाँव के व्यवसायों का लेखा-जोखा बनाया, आबादी की गणना, की समय के उपयोग की पड़ताल की और उसने देखा कि गाँव का आदमी बहुत

काहिल होगया है। बँधे रस्ते धीरे धीरे बँधी चाल से चलना ही उसे रुचता है। चौपालों और अगिहानों पर बैठे हुक्का गुड़गुड़ाते रमठल्ले मारना ही उसे पसन्द है। प्रकृति के भरोसे रहकर वह भाग्यवादी बन गया है और खाने-पीने के सरञ्जाम के मामूली साधन के अलावा अन्य किसी उन्नति का विचार भी उसके हृदय में नहीं रह गया। धीरेन्द्र ने अपनी जाँच से जो देखा उससे वह स्तम्भित हो गया। ओह! इतना गहरा अन्धकार!

उसका उत्साह आग की भाँति फूट पड़ा। भाग दौड़ करके उसने एक ग्राम-सभा स्थापित की। उसके लिये ५०—६० रुपये आरम्भिक चन्दा भी एकत्रित होगया। सभा का मन्त्री धीरेन्द्र ही था। इतना रुपया पा लेने के बाद वह कल से कुछ स्कीमों को पूरा करने में हाथ लगाने वाला था। उसकी पहली स्कीम सफ़ाई की थी—

पहले उन्माद की एक लहर का आनन्द उसे विभोर कर गया।

धीरेन्द्र का दूसरा उन्माद था उसकी शीलवती सुन्दरी स्त्री। वह इतनी पढ़ी लिखी तो न थी, पर गुणवती बहुत थी। सुन्दरी भी अनुपम थी। बाहर जाने पर ग्राम-सुधार का उन्माद था और भीतर आने पर अपनी प्रिय पत्नी के कोमल पवित्र प्रेम का। और कौन कह सकता है कि दूसरे उन्माद का नशा भरघूँट पीने के लिये ही पहला उन्माद विशेष तीव्र न बना हुआ था। नहीं तो वह अपनी सुन्दरी को कैसे अपनी असफलताओं को सुनाकर सम्वेदना से साश्रु मुख-मण्डल के सौंदर्य को निरखता और

सफलताओं पर प्रशंसा और गर्व से उठे उत्साह से खिले मधुर स्निग्ध रूप को देख अपने परिश्रम को भूल जाता।

आज उसे बाहर अभूत-पूर्व सफलता मिली थी। सारा गाँव उसका लोहा मान गया था। सभा का सँगठन होचुका था और आज ही साठ रुपये भी एक-दम जमा हो गये थे। उसके रास्ते की सारी अड़चनें चकनाचूर हो चुकीं थीं। आज गर्वोन्नत मुख से अपनी विजय अपनी हास्योज्ज्वल मुद्रा से घोषित करता वह घर में घुसेगा आज सुन्दरी उसके इस गर्व से फूलकर, एक हलकी मनोहर मुस्कान से ओठों को रँगती हुई आँखों में प्रेम का रस उँड़ेल कर उसकी ओर देखेगी, बस उसके डग सीधे नहीं पड़ रहे थे। उसे संयत होने की आवश्यकता ही क्या? यहाँ तो सब अपने, सब कुछ अपना है। यहीं तो वह स्वतन्त्र उन्मुक्त है, वह इस अन्तर उन्माद में खिंचा अपने कमरे को ओर बढ़ा किन्तु अपने कमरे में पहला पद रखते ही उसे विदित हुआ कि दिन रहते ही सन्ध्या आगई है। उसकी स्त्री उसका स्वागत करने को उठी, उसके मुख पर एक विवश मुस्कराहट भी थी और इसी मिसली मुस्कराहट ने धीरेन्द्र के हृदय पर चोट कर यह बतला दिया कि उसकी प्रिय के हृदय में विषाद का धुँआ घुट रहा है या वह अस्वस्थ है। उसका विजयोल्लास चकनाचूर हो गया। उसका उन्माद राख का ढेर बन गया। एक दम श्मशान शान्ति की विरक्ति उसमें उठी, उसने सोचा यह क्या? वह सौन्दर्य क्या हुआ? उसने विनीत और आग्रहपूर्ण शब्दों में बात पूछी। उसे

पता लगा कि आज उसकी माँ और बहिनों ने उसकी स्त्री को सुना सुना कर उसकी यानी धीरेन्द्र की बहुत बुराई की है। बात इस प्रकार खड़ी हो गई थी कि आज ये लोग पड़ौस में गीतों में जाना चाहते थे। सब तैयार होगये। माँ भी, बहिनें भी। सभी पर अच्छे कपड़े और गहने थे। जब सुन्दरी आई तो उसके शरीर पर एक चाँदी या सोने का टुकड़ा न था। सब कुछ धीरेन्द्र की पढ़ाई पर न्यौछावर कर दिया गया था। यों नंगे शरीर उसे माँ बहिनें अपने साथ ले जाकर अपनी बदनामी कैसे करातीं और बिना साथ लिये जाने में भी बदनामी थी। माँ को भी क्रोध आगया और बहिनों को भी। धीरेन्द्र को सैकड़ों बातें सुनाईं। आह! उनका वर्णन भी सुन्दरी कैसे कर सकती है? अपने पति की निन्दा सुनकर भी वह जीती है। उसे सचमुच आत्म ग्लानि हो रही थी, वह धीरेन्द्र के कन्धे पर अपना सिर रख कर अपनी पीड़ा से फुफक फुफक कर रो उठी। तब धीरेन्द्र ने समझा उसकी सबसे बड़ी हार हुई है। पर क्योंकर? उसने यहाँ आकर ज़मींदार के लड़कों की ट्यूशन करली है, उससे दस दिन बाद उसे तीस रुपये मिलेंगे। यों उसने एक आध छोटा कारबार भी चलाया है, पर उसमें दो चार आने ही बचते हैं। वह क्या करे? दस दिन बाद तीस रुपये मिल जायँगे, तभी सबसे पहले वह अपनी स्त्री को कुछ आवश्यक गहने बनवा देगा। पर इतने दिन सुन्दरी का लज्जावन्त मुख कैसे देखा जायगा। वह भी माँ बहिन तथा अपनी सखियों में मेरी प्रतिष्ठा कैसे बनाये रख सकेगी? तो क्या? तो

क्या ?·····तो क्या यह ठीक हैं; नहीं, बुरा क्या है ? । तीस रुपये से कल काम चालू कर दिया जायगा । शेष बचे तीस रुपयों से वह एक दो हलकी चीज़ें बनवा ले और जब दस दिन बाद ट्यूशन की आमदनी हो ही जायगी तब उसे इधर लगा देगा । इसमें कोई पाप नहीं । वह रुपया मार थोड़े ही रहा है । यह निश्चय कर, वह तुरन्त लौट पड़ा और शहर की ओर चल पड़ा । शहर कोई चार मील दूर था । तीसरा पहर था । वह चीज़ लाकर रात के बारह बजे तक लौट सकता है । वह जल्दी जल्दी डग बढ़ाकर चला जारहा था । रुपये उसकी अण्टी में लगे थे । वह निश्चिन्त था और इस बात से प्रसन्न भी था कि कठिनाइयों को पार करने का इतना सहज मार्ग निकल आया । वह इस सँयोग पर आश्चर्य कर रहा था कि कैसे जिस दिन उसके हाथ में रुपये आये उसी दिन घर में यह प्रश्न उपस्थित हुआ ! उसने सोचा कि कोई भाग्यवादी या ईश्वरवादी होता तो कहता कि ईश्वर ने हाथ में रुपये इसी समस्या को सुलझाने भेजे थे । और वह चला जा रहा था धुन में कि शहर से गाँव को जाते हुए डाकिये ने आवाज़ दी—धीरेन्द्र बाबू—

धीरेन्द्र चौंका । उसे रास्ते में किसी के मिलने की सम्भावना न थी । सामने देखा गाँव का डाकिया था । डाक ले जा रहा था । उसने कहा—आपकी चिट्ठी है । धीरेन्द्र ने देखा उसके प्रिन्सीपल की चिट्ठी है । वह ख़ुशी ख़ुशी चिट्ठी पढ़ते शहर की ओर चलने लगा । प्रिन्सीपल ने और बहुत सी अपनी और कालेज तथा देश

विदेश की बातें लिखकर उससे पूछा था, क्या, क्या प्रोग्राम है, गर्मी की छुट्टियों के। अन्त में एक पंक्ति में उन्होंने लिखा था—"तुम्हारे नौकर द्वारा मुझे तुम्हारा पत्र और पुस्तक मिली। धन्यवाद! मैं तो बिल्कुल भूल ही गया था। तुम बड़े अच्छे लड़के हो"। धीरेन्द्र को होश आगया, नागरिक शास्त्र की बात उसे याद आगई। उसने अण्टी पर हाथ रक्खा, सब रुपये ज्यों के त्यों थे। वह लौट पड़ा, उसे अपने हृदय के दूर के कोने में अपनी स्त्री का मलिन मुख और माँ-बहिनों की रोष भरी आँखें दिखाई दीं। वह कुछ काँपा अवश्य, पर दृढ़ता पूर्वक उसने उस दृश्य को ठुकराने का काम उसके पैर ने भी किया। और उसे प्रतीत हुआ कि कोई गेंद जैसी वस्तु उछल कर रेत से निकल कर सामने जा पड़ी है। उसने उसे उठा लिया। कौतूहल में देखा, वह एक पोटली थी और उसमें किसी की कमाई के, पचास रुपये काग़जों के रूप में गुड़मुड़ मुँह बन्द किये पड़े थे, मानो अपने मालिक से नाराज़ हो उठे थे। उसने उन रुपयों का स्वागत किया। यह तो पाई वस्तु है, इससे ही गहने बनवा लूँ। पाई वस्तु पर पाने वाले का ही अधिकार होता है। नई दुनियाँ का जो हिस्सा जिसे पा गया था वही उसका होगया था। वह इस समय ईश्वर को अनायास धन्यवाद दे गया, मैं अपनी स्त्री के क्रंदन को नहीं ठुकरा सकता। तभी तो वह मेरी सहायता पद पद पर कर रहा है यह पोटली तो मेरी है, उसके हृदय में कभी पढ़ा हुआ एक गीत याद आने लगा—

तू दयालु दीन हो, तू दानि हौं भिखारी—

वह लौट पड़ा था। और शहर की ओर चल रहा था। वह गीत उसकी विचार धारा को रोके उसे मुग्धावस्था में किये शहर के पास ले आया। वहाँ कुछ लोग उसके जाने पहिचाने मिले। उनसे ध्यान बँटा। मुग्धता टूटी। व्यावहारिकता की बातें होने लगीं। नागरिक-संस्था खोलने का इस शहर में भी विचार हो रहा था, शहर था तो क्या ? नागरिक-संस्था तो गाँवों में भी आवश्यक है, इस प्रकार बातें करते वे सराफ़े की ओर जा रहे थे। तफ़रीहन इधर उधर के साइनबोर्ड भी पढ़ते जाते थे। उसकी दृष्टि पड़ी— " सिटी पुलिस आफ़िस "। वह रुका। फिर पुलिस आफ़िस की ओर बढ़ा। साथियों ने कहा—आप तो सराफ़े जा रहे थे। उसे एक क्षण अपनी स्त्री, माँ-बहिन के मुख झिलमिलाते दिखाई पड़े। फिर उसे प्रिंसीपल का पत्र याद आया—नागरिकता, उसने कहा—नहीं मुझे पुलिस थाने में ही काम था। वह पुलिस में चला गया और पाये हुए रुपये जमा करा दिये। वह एक दम यह समझ गया था कि रुपये दूसरे की कमाई के थे। उनका पड़ा मिलना नई दुनियाँ के समान नहीं, फिर कौन कह सकता है कि इस प्रकार नई दुनियाँ को अपना बनाना उचित था। धीरेन्द्र लौट आया। साहस पूर्वक अपने घर के विषाद को झेलना ही अब उसका कर्तव्य था।

× × ×

कई दिन होगये। ग्राम्य-सुधार का काम धीरेन्द्र के हाथों बड़ी

तेज़ी से चल रहा था। जिस नागरिक कर्तव्य के उन्माद के लिये उसने अपने अन्तर उन्माद की बलि चढ़ा दी, जिसके लिए घर के विषाद का विष पीकर वह आज शिव बन गया था उसमें कोई कमी कैसे रहती उसके कार्यों की पास पड़ौस में बड़ी चर्चा थी।

आज अपने घर बैठा सुरेश एक ऐसा चार्ट बना रहा था कि गाँव के किस खेत में किन रसायनिक द्रव्यों का अभाव है, और उसे कैसे पूरा किया जा सकता है कि डाकिया एक अख़बार रख गया।

धीरेन्द्र ने अख़बार उठाया। पन्ने पलटे। अपने शहर के समाचारों को देखकर चौंक पड़ा, एक समाचार था—

खोये रुपये मिले—किसान की जान बची।

कुछ दिन की घटना है कि धिमसिरी गाँव का एक भोपतिया नाम का किसान घर से ५०) रुपये लेकर शहर में ज़मीदार को क़र्ज़ चुकाने जा रहा था। वे रुपये उससे रास्ते में गिर गये। वह ज़मीदार के यहाँ पहुँचा, तो रुपया न दे सका। ज़मीदार ने उसे क़ैद करा दिया। बेचारे के बच्चे रोने बिलपने लगे। भाग्य की बात कि वे रुपये मौजा कामदन के एक उत्साही नागरिक कार्य करने वाले युवक धीरेन्द्र को मिल गये। वे पुलिस में जमा करा दिये गये। पुलिस ने कल पता लगाकर भोपतिया किसान को दे दिये। किसान मुक्त हो गया।

ज़मीदार ने भी उससे ४०) रुपये ही लिये। धीरेन्द्र और पुलिस धन्यवाद के पात्र हैं।"

धीरेन्द्र का सिर झुक गया। नागरिक-शास्त्र के शब्द उसकी आँखों के सामने नाचने लगे। यदि उसने रुपये अपने काम में ले लिए होते तो बेचारे किसान का क्या होता। सहानुभूति से उसके नेत्र साश्रु हो गये। वह विकल होकर खुली हवा में निकलने को तेज़ी से किवाड़ खोलकर बाहर निकला कि दर्वाज़े पर एक आदमी का धक्का लगा। वह चौंककर झिझका और रुक गया। उसने उस नवागन्तुक को देखकर क्षमा माँगी और पूछा आप कौन ? कैसे ?—

उस आदमी ने कहा—मैं भोपतिया किसान, अपने मुक्तिदाता के दर्शन.....

धीरेन्द्र बदहवास हो गया। उसका मुँह बन्द कर दिया और उससे प्रेम से चिपट गया।

———

६

हठ का अभिशाप

अपने हित को सीधे-सच्चे रूप में भी ठीक ठीक कौन समझ सका है ? हमारा हित हम से ताल ठोक कर संघर्ष करता है, हम उसे अपनाना नहीं चाहते। वह हमें एक अद्भुत भाँति से अपनी पकड़ में ले लेता है। विवश होकर ही हम उसे अपनाते हैं। यह बात प्रकाश और उसके दल के लोग भली भाँति जानते थे। समाज में, राष्ट्र में, राजनीति में, सबमें सुधार अथवा परिवर्तन करने वालों को इसीलिए कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। मनुष्य अपने अनहित और अपनी हानियों को सहता हुआ भी पुरानी चाल ढाल में रहना पसन्द करता है। तो जब प्रकाश

पाँच छः साथियों को लेकर क़स्बा ऐदिलपुर में गर्मियों की लम्बी छुट्टियाँ बिताने आया और अपने सुधारवादी प्रोग्राम को कार्यान्वित करने का यत्न किया तो उसे आश्चर्य न हुआ कि इतने हित की बातों का भी ऐसा विरोध क्यों किया जा रहा है ?

प्रकाश बी० ए० की परीक्षा दे चुका है। उसके सभी साथी विद्यार्थी हैं। कोई एम० ए० के विद्यार्थी हैं, कोई बी० ए० के। सभी अर्थशास्त्र का अध्ययन करते हुए जब किसान और कारीगर की आय-व्यय का चिट्ठा तैयार करने अपने शहर के आस-पास के गाँवों में भटकते थे तो उन्हें उनकी ग़रीबी से भी ज़्यादा खटकने वाली बात उनका अज्ञान, काहिली और गन्दगी लगी थी। युवक भावुक थे। हृदय में अपने जीवन को कुछ उपयोगी बनाने की धुन भी थी। खा-पीकर मौज उड़ाने में उन्हें विश्वास नहीं था। उन्हें ऐसा लगता था कि जिन देशों में प्रत्येक निवासी को भर पेट भोजन मिल जाने की व्यवस्था है, वहाँ के निवासी यदि मौज उड़ाने के शौक़ को पूरा करें तो क्षम्य हो सकते हैं किन्तु भारत में अभी मौज उड़ाने का भाव अनाचार है और अनुचित है। जीवन को आज दिन अधिक से अधिक दूसरों के लिये उपयोगी होना चाहिए। उसे अपने से विचारों के पाँच छः विद्यार्थी और मिल गये। सबने मिलकर गर्मी की छुट्टियों का प्रोग्राम बना डाला। सोच रहे थे एदिलपुर गाँव को सब मिल कर इन छुट्टियों में ही आदर्श बना देंगे। जिस काम को गाँव वाले न करेंगे, उसे वे अपने हाथों कर डालेंगे। सफ़ाई का काम सब

से अधिक महत्त्व रखता है। वे स्वयम् अपने हाथों गाँव की गलियों की झाड़ू लगायेंगे। उन्हें जब दो महीने साफ़ रहने की आदत पड़ जायगी तो फिर गन्दे न रह सकेंगे और अपनी सफ़ाई स्वयम् करने लगेंगे। हम छः सात हैं। दिन में घर घर में जाकर सिर पड़कर पढ़ाएंगे तो पहले महीने में ही गाँव भर को पढ़ा लिखा देंगे। ऐसा यत्न करेंगे कि गाँव वालों पर उनका किसी प्रकार का अभिमान प्रकट न हो। वे उन लोगों में उन्हीं की भाँति उन्हीं का सा मोटा खाना-कपड़ा व्यवहार में लाते हुए रहेंगे।

बहुत सीधे-सादे वस्त्र पहने वे गाँव में पहुँचे। वहाँ बड़े कौतूहल से उनका स्वागत हुआ। किसी ने समझा खुफ़िया पुलिस के आदमी हैं। किसी ने कहा काँग्रेसी हैं। किसी ने बताया ईसाई बनाने आये हैं। एक आदमी उसी दिन शहर से आया था। वह वहाँ कहीं सुन आया था कि एक बड़े ठाट बाट वाला आदमी धोखा देकर एक भले आदमी को ठग ले गया, उसने अपने दो चार साथियों को अकेले में बड़ी समझदारी दिखाते हुए बतला दिया कि देखो, सावधान रहना। किसी दिन किसी के गाय-बैल न खोल ले जायँ। आज कल के ठग देखने में बड़े भलेमानुस लगते हैं। उनके असली उद्देश और अर्थ को कोई भी न समझ सका और पहले ही पहल समझे भी कैसे? जो अनुमान लगाये जाते हैं वे शक की बराबर होते हैं—उनमें भय और आशङ्का का भाव विशेष रहता है। ऐसे अस्थिर और आशङ्कापूर्ण विचारों के रहते हुए भी प्रत्यक्ष भले मनुष्यों का आदर शिष्टाचार वश ही

किया जाता है। फिर इनका तो सबसे पहले नवलराय ने सत्कार किया था जो गाँव का ज़मीदार था। उसके यहाँ जिसकी इज्ज़त है उसका आदर सारा गाँव करना ही चाहे। गाँव वालों ने नवलराय को इनका सत्कार करते देखा था। बात यह हुई थी कि जब वे गाँव में घुसे तो न जाने कहाँ से एक दूर पड़े कुत्ते ने इन्हें देख लिया। उसे इनकी अपरिचित अद्भुत शक़ल देख कर कौतूहल हुआ। यह आज गाँव में कौन आगया रे? इस अभिप्राय से उसने एक "भूँ" की। पड़ौस के छप्पर में खाट के नीचे से कुछ आँखें खोले कुछ मूँदे एक और महाशयजी ने अपना सिर ज़रा बाहर निकाल कर देखा क्या है? उनको भी ये लोग दीख गये; फुर्ती से उठकर एक अँगड़ाई ले कान फड़फड़ा कर उन्होंने ज़रा दोबार दोहराते हुए कुछ तीव्र स्वर में पूछा--भूँ-भूँ, अरे भाई, आख़िर, सच ये कौन हैं? एक कुत्ता अपनी खुराक की फिराक़ में एक घर में घुस रहा था कि लौट पड़ा, और जो भी दो तीन इधर उधर थे आ उपस्थित हुए। अब क्या था, उस सेना ने ज़ोर से भूँकना शुरू किया। लड़के आपस में खड़े एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। बोले—कहो, कैसा स्वागत हो रहा है! एक डण्डा लेकर भी न चले। कैसे दाँत निकाल निकाल कर दौड़े पढ़ रहे हैं। अभी तक ये कुत्ते दूर से ही चीख़ पुकार कर रहे थे कि पड़ौस के मकान का दरवाज़ा खुला और एक बुलडौग उसमें से बाघ की भाँति उछल कर इन लोगों पर रूर पड़ा। ये लोग सँभलें-सँभलें कि वह देशी कुत्तों का दल भी उन पर उछल-कूद

मचाने लगा। बड़ी आफ़त में थे। एक ही बेंत था। एक ओर से रक्षा करते दूसरी ओर से आक्रमण होता। अभी तक हाथा-पाई की नौबत नहीं आई थी। एक-आध के कपड़ों पर तो मुँह मार दिया था पर शरीर बचा हुआ था। भय था कि यह बुलडौग अवश्य किसी को घायल कर देगा। वह अपनी पिछली टाँगों पर खड़ा हो हो कर इनका सामना करता था। बड़े भयभीत थे कि आवाज़ आई—"बुल-बुल लौटो। यह क्या कर रहे हो?" युवकों ने देखा एक प्रौढ़ मनुष्य है। अमीरी सारे शरीर में चिकना गई थी। मलमल का हलका कपड़ा, लखनवी कढ़ाव, मख़मली जूते, आँखों में हलकी खुमारी। बुलडौग इन्हीं का था। उनकी आवाज़ सुनते ही पहले तो वह तेज़ पड़ा किन्तु तीखी फटकार ने उसे मायूस कर दिया। वह मालिक की आज्ञा से घर लौट पड़ा। ये प्रौढ़ ही नवलराय थे। उन्होंने बुलडौग की करतूतों पर क्षोभ प्रकट करते हुए, इन युवकों का स्वागत किया। वह समझ गया कि ये कहीं पढ़ने वाले लड़के हैं। अपने यहाँ बैठाया। शरबत पिलाया। खूब ख़ातिरदारी की।

गाँव वालों ने भी इनका स्वागत किया, चाहे मनमें कैसे ही भाव थे। इनके पढ़े लिखे होने का भी कुछ प्रभाव पड़ा। इन लोगों को रहने को एक अलग झोंपड़ी दे दी गई। पहले इन लोगों ने उस झोंपड़ी की व्यवस्था की। उसे अपने मनके अनुसार ठीक रूप में सजाया। एक ओर छोटा सा पुस्तकालय और वाचनालय छप्पर डालकर खड़ा कर दिया गया सामने एक बाड़ी और

बगीचा लगा दिया। उसमें शाक-भाजी भी थी और फूल भी थे। अपनी सारी सफ़ाई अपने हाथों करते थे। अपने स्नान और कपड़े धोने का स्थान अलग कोने में बनाया गया था कि उसका पानी पेड़ पौधों में न जाय। इस प्रकार धीरे धीरे उनकी झोंपड़ी आठ दस दिन में ही सुन्दर हरी-भरी दीखने लगी।

अब लोंगों को उन पर श्रद्धा होने लगी थी। शाम को प्रति दिन प्रकाश के पास गाँव के चार पाँच आदमी हार से लौटते बैठ जाते थे। वह उन्हें स्वच्छ सुन्दर जल पिलाता था। किसी किसी दिन ठण्डाई भी बना देता था। बैठ कर वह उन्हें रामायण सुनाता था। रामायण के पाठ का नित्यक्रम लग गया। वे कथा में जगह जगह पर चौपाइयों के आधुनिक दृष्टि से अर्थ करते हुए नागरिकता की बातें समझाते जाते थे। उन्होंने रामायण को धार्मिक उपदेश के लिए चुना था। धीरे धीरे आने वालों की संख्या बढ़ गई। सभी उन लोगों की प्रशंसा करने लगे। स्त्रियाँ भी आने लगीं। वे गाँव वालों की हर बात में सहायता करते थे। गाँव वाले अब उन्हीं से सलाह लेने आने लगे। इसका असर नवलराय पर बुरा पड़ा। उनकी चौपाल की शोभा उड़ गई। जो लोग नवलराय की चौपाल पर बैठकर इधर उधर की गप-शप में और उनकी ख़ुशामद में लगे रहते थे वे भी रामायण सुनने जाने लगे। जो सलाहें पहले नवलराय से ली जातीं थीं वे अब उनसे न ली जातीं थीं। इन सब बातों से रह रह कर नवलराय का जी कुढ़ने लगा। उसे ऐसा लगा कि उसका सम्मान

कम हो रहा है। ये कल के छोकरे उसकी इज्जत मिट्टी में मिला रहे हैं। अब जिधर भी निकल जाता उसे प्रकाश की तारीफ़ होते मिलती। उसके नौकर तक रामायण सुनने जाने लगे। वे भी उसकी प्रशंसा करते थे। उसे जहाँ पहले अपनी प्रशंसा सुन मिलती वहाँ प्रकाश की प्रशंसा उसके कानों में पड़ती थी। इससे बढ़कर दुःख पहुँचाने वाली बात और क्या हो सकती थी? नवलराय ने सोचा, मैंने अच्छा इनका स्वागत किया! किन्तु अब तो कोई विधि इनको नीचा दिखाने की होनी चाहिये।

× × ×

उधर प्रकाश केवल रामायण का पाठ ही नहीं करता था, उन्हें स्वास्थ्य और सफाई की बातें भी सिखाता था। अब लोग-बाग अपने घरों को पहले से अधिक साफ़ रखने लगे। अपने अपने कपड़ों को भी साफ़ रखने लगे। इन सबका फल यह हुआ कि लोगों के स्वास्थ्य तो सँभले पर घर के कूड़े बाहर गली में जमा होने लगे। बाहर का ध्यान किसी को न था। प्रकाश ने देखा यह गली का घूरा तो किसी दिन भीषण बीमारी उत्पन्न कर देगा और सारे गाँव को उसके कारण बड़ी हानि उठानी पड़ेगी। पास-पड़ौस में उसने देखा बहुत से गड्ढे भी हो रहे हैं जिनमें बरसाती पानी भर जाया करता है। अभी गरमी थी, यदि इस ऋतु में इसका कोई प्रबन्ध न हुआ तो सारा गाँव मलेरिया अथवा हैज़े का शिकार हो जायगा। प्रकाश ने सोचा एक दिन सफ़ाई दिवस मनाया जाय। सब लोग गाँव के घरों की

सफ़ाई करें और कूड़े-करकट को गली में से उठा कर दूर फैंकें। यह गली की सफ़ाई भी सब अपने हाथों से करेंगे। किसी महतर या चमार की सहायता न ली जायगी। सफ़ाई का प्रोग्राम दोपहर तक समाप्त हो जायगा। शाम को गड्ढे भरने का काम होगा। उस दिन शाम को रामायण की कथा कहते कहते आवेश में उसने गाँव की गन्दगी का वर्णन और उससे हानि की आशंकाएं बतादीं। उसने कहा—तुम्हारा मनकू बीमार है, उसका खचेरा जूड़ी में पड़ा है, इसका राम पेचिश भुगत रहा है, तुम्हारे गाय-भैंस लट रहे हैं, वे बीमार हैं और इसका कारण है तुम्हारी सुस्ती और गन्दगी। अपनी गलियों को देखो--नाक सड़ जाती है। वहीं मोरियों का पानी भर रहा है। उसी पर घर का धोवन कूड़ा! सारी गली कीड़ों मकोड़ों और भुनगों से बजबजा रही है। दुर्गन्धि से सर दूखने लगता है। इसे साफ़ करो—अपने हाथों से साफ़ करो। कल हम सब लोग यही काम करेंगे। फिर गड्ढे भरने हैं, सब लोग लग जायँगे तो आनन-फानन में काम हो जायगा। सफ़ाई हमारी सबसे पहली ज़रूरत है। जो जाति जितनी साफ़ है उतनी ही तन्दुरुस्त है। उतनी ही बलशाली है। लोगों की समझ में बात आगयी।

यह ख़बर नवलराय ने सुनी तो आग बबूला हो उठे। अपने लोगों से कहा—ऐसा निकृष्ट काम गाँव वालों को हरगिज़ न करने दिया जायगा। सबकी बुद्धि मारी गयी है। मेहतर का काम करके धर्म भ्रष्ट होना चाहते हैं, ये गाँव वाले। उन कल के

कृष्ठान छोकरों की बातों में आगये हैं। गाँव वालों ने नवलराय की ये बातें सुनीं और मुस्करा दिये। वे पहले ही प्रकाश का बहुत विरोध कर चुके थे। और ये सब बातें उन्होंने प्रकाश को आरम्भ में ही कही थीं। किन्तु इन बीस पच्चीस दिनों में समाचार पत्रों की ख़बरें सुन सुनकर, अच्छे लेखकों की पुस्तकें पढ़-सुनकर उनके विचार बदलने लगे थे। नवलराय ने देखा उसकी बातों का कोई प्रभाव न पड़ा। दूसरे दिन प्रातःकाल प्रभातफेरी लगायी गयी और तत्काल ही गाँव की सफ़ाई में लोग लग गये। दोपहर से पहले ही सारा गाँव जगरमगर कर उठा। सफ़ाई कर चुकने के बाद जब सब गाँव वाले नहा धोकर गलियों में फिर परिक्रमा करने चले तो अपने गाँव की सुन्दरता पर उन्हें आश्चर्य होने लगा। उन्होंने कभी कल्पना न की थी कि इस प्रकार सफ़ाई के बाद गाँव सुन्दर और सुखद लगने लगेगा। इस प्रोग्राम में नवलराय ने कुछ भी भाग न लिया। वरन् अदबद के वह अपने घर का कूड़ा अपने घर के सामने डालने लगा। जब गाँव वाले उसे हटाने पहुँचे तो कहा—ख़बरदार जो हमारी ज़मीन में पैर रक्खा। सिर फोड़ दूंगा। लोग हट गये। सारा गाँव जगमगा रहा था और नवलराय का पड़ौस भिनभिना रहा था।

शाम का प्रोग्राम आरम्भ हुआ। एक राष्ट्रीय गीत गाते हुए गाँव के नवयुवक फावड़े और डलियाँ लिये निकले मानों राजपूत युद्ध को जा रहे हों। सब जुट गये। आन की आन में गाँव के पास-पड़ौस के छोटे मोटे गड्ढे भरवा दिये गये। अब बारी थी

नवलराय के मकान के पास वाले गड्ढे की। प्रकाश का दल वहाँ पहुँचा। पर नवलराय तो आज ठान चुका था। वह इस गड्ढे को नहीं भरने देगा, नहीं भरने देगा। नवलराय की ज़िद चिढ़ में परिणत हो चुकी थी। प्रकाश ने कहा--वीरो, इस गड्ढे को और भर दो। नवलराय ने पुकार कर कहा-- खबरदार! जो उधर ज़रा भी क़दम बढ़ाया तो सिर फोड़ दूंगा। यह गड्ढा नहीं भरा जायगा।

प्रकाश ने उन्हें गड्ढे की हानियाँ समझाईं किन्तु नवलराय अपनी ज़िद पर अड़ा रहा। उसने लठैत इकट्ठे कर रखे थे। वह आज प्रकाश की हड्डी पसली तोड़ डालना चाहता था। पर प्रकाश ने अवसर न दिया। उसने कहा--देखिये, इससे सारे गाँव को हानि है। आप नागरिकता की इतनी बात समझिये कि आप अपने घर में भी कोई ऐसा काम नहीं कर सकते जिससे दूसरों को हानि हो। उत्तर मिला--" जिसको हानि हो वह चला जाय, यह गड्ढा ऐसा ही रहेगा "। प्रकाश ने कहा--तो लौट चलो भाई। हमें झगड़ा नहीं करना।

पर नवलराय की बातों का असर गाँव वालों को क्रोधी बना रहा था। उन्होंने सोचा हमें हानि होगी, इस गाँव को छोड़ कर चले जायँ! अच्छी कही! नहीं यह गड्ढा भरा जायगा और अभी।

लोग दौड़े। उधर नवलराय ने भी अपने लठैत खड़े कर दिये।

लोगों पर जैसे भूत सवार था, आन की आन में पचासों डलियाँ मिट्टी से भर गईं। वे गड्ढे में डाले जाने को थीं कि लठैतों ने रोक दिया। प्रकाश ने देखा बिना लाठी चले न रहेगी। उसने शान्त शब्दों में गाँव वालों को समझाया कि जल्दी मत करो। नवलराय जी को अपनी भूल मालूम होगी और वे आपकी बात मानेंगे।

प्रकाश का आदर बढ़ गया था। सारे गाँव वालों ने उसकी बात मानली और लौट पड़े। उस दिन शाम को सफ़ाई दिवस के उपलक्ष में सारे गाँव में दीपावली मनायी गयी। गाँव तारों से जगमगाने लगा।

नवलराय के घर के आगे कूड़ा बढ़ रहा था। दुर्गन्धि तीव्र हो रही थी। जो भी वहाँ से होकर गाँव में घुसता नवलराय को तो कोसता और गाँव की प्रशंसा करता। पर नवलराय की ज़िद उन छोकड़ों की बात मानले! आख़िर बरसात आगयी। सामने पड़ा कूड़ा पानी के संसर्ग से सड़ उठा। गड्ढे के पानी में मच्छर पैदा होने लगे। पर वाह रे नवलराय!

आख़िर जो होना है वही हुआ। नवलराय का बड़ा लड़का मलेरिया से बीमार पड़ा। फिर दूसरा पड़ा, तीसरे को क़ै-दस्त होने लगे। गाँव वाले घबड़ा रहे थे। क्या करें? नवलराय ने बड़ा नामी गिरामी डाक्टर बुलाया। उसने नवलराय के घर के आस पास की गन्दगी देखकर नाक दबा ली और उलटे क़दम लौटता हुआ बोला—माफ़ कीजिए, जहाँ साक्षात् मौत नृत्य कर

रही है वहाँ डाक्टर कुछ नहीं कर सकता। नवलराय जी! आप यह नहीं देखते कि जब तक यह गन्दगी है तब तक आपके घर से बीमारी दूर नहीं हो सकती। और आप जो रुपया दवाओं में खर्च करते हैं उसे पहले इस गन्दगी को हटाने में खर्च कीजिए। जब यह साफ़ हो जायगा तभी मैं आपके घर में क़दम रख सकूंगा। नवलराय का मुँह फीका पड़ गया। उसे आज अपनी ज़िद का भीषण परिणाम दिखायी देने लगा। घर में लड़कों को मृत्यु घेरे पड़ी थी। डाक्टर की सहायता तक नहीं मिल सकती थी। उसके घर के कूड़ों के ढेर कितनी भीषण दीवारों की भाँति डाक्टर का मार्ग रोके खड़े हैं। वह क्या करे? मेहतरों और चमारों से उठवाने में और गड्ढे भरवाने में हफ्तों लग जायँगे। कोई रास्ता न था। आखिर उसने मान-अपमान के प्रश्न को भूलकर प्रकाश से सलाह लेना उचित समझा।

प्रकाश के पास जब वह पहुँचा तो उसकी झोंपड़ी की सुन्दरता को देखकर वह अवाक् रह गया। उसने प्रकाश से अपने व्यवहार की क्षमा माँगी और अपनी कष्ट-कथा सुनायी। प्रकाश ने कहा—देर आयद दुरुस्त आयद। जब समझ जायँ तभी ठीक है। ठोकर खाकर बुद्धि आती है। उसने गाँव वालों से प्रार्थना की कि अब समय आगया, अब चल कर गड्ढा भरिये और सफाई कीजिए। सारा गाँव पिल पड़ा। नवलराय फावड़ा लिये हुए सबसे आगे थे। आज उन्हें सफ़ाई का ही नहीं परिश्रम का भी मूल्य मालूम पड़ा। उन्होंने आज यह भी अनुभव किया

कि मेहतरों और चमारों को ऐसे पवित्र कार्य के कारण ही अछूत कहना कितनी बड़ी भूल है। थोड़े समय में सारी गन्दगी वहाँ से दूर होगयी। गड्ढा भर गया। उसका पानी सूख गया--गाँव से बीमारी नेस्तनाबूद हो गयी।

प्रकाश अब उस गाँव में नहीं। कालेज खुल जाने पर उसका दल गाँव से लौट गया, किन्तु उनके कार्य में कोई शिथिलता नहीं पड़ी। नवलराय ने उनका काम सँभाल लिया है। गाँव अब सब मिलकर चल रहा है। नवलराय को प्रतिष्ठा पूर्ववत् हो गयी है।

———

७

न्याय के लिये

हरकृष्ण बहुत उदास होगया। वह प्रायः सभी रेलवे अधिकारियों के पास जा चुका था किन्तु कोई भी उसकी बात सुनने को तैयार न होता था। इससे कहो; नहीं, उससे कहो; नहीं, फलाँ से कहो या अमुक से कहो। इस प्रकार उत्तर देकर टाल बताना भर ही क्या अधिकारियों ने सीखा है? क्या थर्डक्लास के यात्रियों की चिन्ता करना उनका कर्तव्य नहीं, वह भी ऐसे आवश्यक अभाव के सम्बन्ध में। गाड़ी भरमें पाखाने के नलों में पानी नहीं। कैसे रास्ते भर काम चलेगा? यहीं से गाड़ी बनती है। यहीं उसको सब प्रकार तैयार कर देना चाहिए। पर इन्हें अपने

अधिकार में कुछ समझ ही नहीं पड़ रहा। अगर फ़र्स्ट या सैकिंड क्लास ने का यात्री कोई शिकायत करे तो कैसे अभी सारा स्टेशन काँप उठेगा। अब ज़रा से प्रबन्ध की हमारी शिकायत पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा। स्टेशनमास्टर के पास वह गया; गार्ड से उसने कहा; असिस्टेंटों पर वह भागता फिरा। जो काम अपने कर्तव्यवश उन्हें स्वयं कर देना था, वह सुझाने पर भी नहीं किया जा रहा। उसने एक बार फिर स्टेशनमास्टर के दफ़्तर की ओर क़दम बढ़ाया किन्तु उसे स्टेशनमास्टर मिले ही नहीं। वह क्षुब्ध हो उठा। घड़ी में १२.५ हो चुके थे और गाड़ी १२.७ पर जाती थी। वह सोच रहा था कि इस प्रकार यदि इन अधिकारियों की लापरवाही को सह लिया जायगा, यों अपनी सुविधाओं की उपेक्षा सह ली जायगी तो कभी ठीक नहीं होगा। उसने अपने साथियों को उकसाया कि और कुछ नहीं तो हल्ला ही मचायें। कौन हल्ला मचावे? हमें क्या ग़रज़ पड़ी है? हम तो रेल में कभी शौच जाते ही नहीं? पानी नहीं है न सही, थोड़ी थोड़ी देर बाद स्टेशन आते ही हैं, चाहे जितना पानी लो! हमें तो अपने घर पहुँचना।

सब यही समझ रहे थे कि हरेकृष्ण की लड़की का विवाह है। हरेकृष्ण जनता की इस हृदय-हीनता और संकुचित स्वार्थपरता को देख कर मन में दुखी हो उठा। भगवन्! यहाँ भारत के लोग कैसे क्षुद्र हो गये हैं। ये अपने इस क्षण को ही देख रहे हैं। इस समय इन्हें जिसकी आवश्यकता नहीं है समझते हैं उसकी उन्हें

शायद कभी आवश्यकता न होगी। और दूसरों की कठिनाई और कष्ट को तो वे जानें ही क्या? नागरिक भाव इनमें हैं ही नहीं। वह क्या करे? जो बात उसके सामने आगयी है उसे अधूरा छोड़ने वाला वह प्राणी न था। पहले तो उसने सोचा जाने दें। जब सबको फ़िक्र नहीं तो वही क्या करे? कोई भी काम मिल कर अच्छा होता है। गार्ड सीटी दे रहा था। उसने कहा चलोजी··· पर दूसरे ही क्षण उसने कहा—नहीं, ऐसे गाड़ी को नहीं चला जाने दिया जा सकता। बिना यात्रियों को सारी सुविधाऐं दिये ये गाड़ी चला ही कैसे रहे हैं?—नहीं।

वह गाड़ी में चढ़ गया था। हरी झण्डी दिखाई जा चुकी थी। इंजिन ने अन्तिम सीटी दी और चल दिया। गार्ड मुस्करा मुस्करा कर अपने सहयोगियों का अभिवादन करके छुट्टी ले रहा था कि उसने देखा अभी उसका डिब्बा उसके पास नहीं आ पाया और गाड़ी रुक भी गयी। सुनाई पड़ा, किसी ने जञ्जीर खींच दी है। तलाश होने लगी। आखिर हरेकृष्ण पकड़े गये। उन्होंने कहा—गाड़ी को वह हरगिज़ उस समय तक नहीं चलने देंगे जब तक रेल में पानी का प्रबन्ध नहीं किया जायगा।

रेलवे कर्मचारियों ने यह अनुमान ही न किया था कि यह मामूली सा आदमी इस सवाल को यह रूप दे देगा। उन्होंने जिस समस्या को टालना चाहा था वह अब और न टल सकती थी। अब तो सभी कहने लगे—हाँ, ठीक तो है। क्यों नहीं पानी दिया?

कितनी परेशानी उठानी पड़ती है। भाई, इसका साहस खूब है। अब जुर्माना देना पड़ेगा। नहीं जी!

अधिकारियों को विवश होकर पानी भरवाने का प्रबन्ध कराना पड़ा। सभी यात्री तमाशा देखने उतर पड़े और सभी हरेकृष्ण के साहस की प्रशंसा कर रहे थे। जब उसके फल स्वरूप पानी पहुँचाया गया तो सभी की दृष्टि में हरेकृष्ण बहुत ऊँचा उठ गया। रेलवे अधिकारियों को इतनी भीड़ के सामने बहुत लज्जित होना पड़ा। उन्हें भय लगा कि गाड़ी के लेट हो जाने का उत्तरदायित्व उन्हीं पर पड़ेगा। उनसे ही पूछा जायगा कि क्यों बिना प्रबन्ध के गाड़ी चलादी। अच्छा हो यदि यह व्यक्ति गाड़ी रोकने का कोई और कारण बतादे। किन्तु वह निश्चित था। उसका नाम पता लिख लिया गया। गाड़ी चली गयी।

× × ×

रेलवे ने हरेकृष्ण पर मुक़दमा चला दिया। समाचार-पत्रों ने इस मुक़दमे की सूचना देते हुए टिप्पणी में लिखा था कि हरेकृष्ण का साहस सराहनीय है। उनके कार्य की उपयोगिता सार्वजनिक दृष्टि से है। हम सभी को थर्ड क्लास में यात्रा करनी पड़ती है किन्तु हमने कब कोई उद्योग अपने लिये उचित सुविधा प्राप्त करने का किया है। हरेकृष्ण के कार्य का क़ानून क्या अर्थ लगाता है यह तो अब देखा जायगा।

× × ×

कचहरी में बड़ी भीड़ थी। शहर के अनेकों लोग घिर आये थे। सभी हरेकृष्ण को देखने को उत्सुक थे। उनकी बातें सुनना चाहते थे। कचहरी में हरेकृष्ण ने अपने भाषण में कई मार्के की बातें कहीं। उनका कुछ अंश इस प्रकार था:—

मैं इस बात से अपरिचित नहीं कि नागरिक को सभी वैध नियमों का पालन करना चाहिए। और रेलवे का यह क़ानून है कि जो भी बिना किसी ख़तरे के जंजीर खींचेगा उस पर ५०) रुपये जुर्माना होगा। मैं रेलवे के इस नियम को भली प्रकार जानता था। मैंने जान बूझकर ही यह नियम तोड़ा है। इससे मैं किंचित भी अपने नागरिक उत्तरदायित्व से च्युत नहीं हुआ। नागरिक का जहाँ यह कर्तव्य है कि सभी उचित क़ानूनों का पालन करे, वहीं यह भी कर्तव्य है कि भरसक किसी को क़ानून पालन में प्रमाद न करने दे। उस प्रमाद से किसी सार्वजनिक हित में बाधा पड़े वहाँ तो वह और भी नहीं सहन कर सकता।

मेरे मामले में सबसे बड़ी बात यह विचारणीय है कि मुझे जञ्जीर खींचने को किसने बाध्य किया। यदि रेलवे कर्मचारियों ने अपने कर्तव्य का यथाविधि पालन किया होता या जब उनसे प्रार्थना की गई थी तब उसे अपने अधिकार मद में उन्होंने तुच्छ समझ कर अवहेलित न कर दिया होता तो मैं नियमोल्लंघन क्यों करता मैं तो कहता हूँ जहाँ जहाँ भी अधिकारी अपना कर्तव्य भूल जायँगे, वहीं इस प्रकार के नियमोल्लंघन के काण्ड

घटित होंगे। जब क़ानून कहता है Come with clean hands शुद्ध रूप में आओ, तो वह यही चाहता है कि तुम अपनी ओर से ग़लती मत होने दो, फिर यदि दूसरा ग़लती करता है तो उसको दण्ड मिल सकता है। यहाँ रेलवे ने ग़लती कर मुझे प्रेरित किया कि मैं उनका ध्यान प्रबलता से आकर्षित करने को इस अवैध उपाय का अवलंबन करूं। अतः वे मुझे किसी न्यायालय में लेजाकर अपने अपराध से मुक्त नहीं हो सकते।

कर्तव्यशून्य अधिकार यानी निरपेक्ष अधिकार कहीं नहीं हो सकते। जहाँ वे हैं वे अवश्य ही मनुष्य को शोषण करने और गुलाम बनाने के लिये हैं। वे ईश्वर की सृष्टि को असुन्दर बनाने के प्रयत्न हैं।

मैंने जञ्जीर अपने स्वार्थ के लिये नहीं खींची। मुझे पानी की किंचित् आवश्यकता न थी। मैंने वह सार्वजनिक हित की दृष्टि से ही खींची थी। मैं तो समझता हूँ कि मैंने जैसा किया, उन परिस्थितियों में प्रत्येक समझदार व्यक्ति यही करेगा।

मैंने वस्तुतः न्याय की माँग की थी। अधिकारियों को अन्याय करने से रोका था। वह अधिकारी वर्ग जो थर्डक्लास के किराये से अपना वेतन पाता है, फ़र्स्ट और सैकिंड क्लास का इतना ध्यान रक्खे, और थर्ड क्लास की दी हुई मामूली सी सुविधा को भी असुविधा बना देने का यत्न करे, इससे बढ़कर अन्याय क्या होगा? मेरा

पूरा कार्य न्याय्य था। यों न्यायाधीश किन्हीं शब्दों के चक्कर में भले ही उसे दण्डनीय ठहरावें।

× × ×

सारी उपस्थित जनता ने हरेकृष्ण का भाषण सुना। लोग उसके साहसोद्दीप्त मुख को देखकर और उसके ओजपूर्ण शब्दों को सुनकर रोमाञ्चित हो रहे थे। उनके शरीर में बार बार बिजली दौड़ती थी। उसके भाषण के बाद एक दम सन्नाटा छा गया। कुछ देर बाद अन्य कार्रवाही, होती रही, अन्त में न्यायाधीश ने अपना फ़ैसला सुना दिया कि—

हरेकृष्ण का कार्य देखने में अवैध था। जिस न्याय को इन्होंने चाहा था वह तत्काल चाहे उसी विधि से हो सकता हो जिसका उन्होंने उपयोग नहीं किया, किंतु न्याय केवल परिणाम और उसके उद्देश्य को नहीं देखता, वह तो सम्पूर्ण घटना को एक समझता है। इस प्रकार के न्याय के लिये मार्ग और भी थे, कुछ को उन्होंने आज़माया किन्तु असफल होकर उतावले बनने की आवश्यकता न थी। न्याय धैर्य चाहता है। यदि बिना वास्तविक क्षति हुए जञ्जीर खींच ली जाने दी जायगी तो फिर रेलों का ठीक प्रबन्ध कदापि नहीं हो सकता। मैं अभियुक्त के साहस और तत्पर बुद्धि की प्रशंसा करता हूँ, उसकी परोपकार वृत्ति को भी भूल नहीं रहा हूँ। उसके प्रति मुझे श्रद्धा है। वस्तुतः कोई भी क़ानून नहीं तोड़ा गया है। क़ानून शब्दों पर आश्रित है। शब्द यह नहीं कहते

कि इस प्रकार के कामों के लिये भी उसका उपयोग नहीं हो सकता है। अतः यह अपराध नहीं है। मैं हरेकृष्ण को मुक्त करता हूँ·····।

यह निर्णय देकर न्यायाधीश चले गये। जनता का हृदय हरेकृष्ण के वशीभूत हो चुका था। जैसे ही हरेकृष्ण लौटे—वैसे ही जनता ने जय ध्वनि की—

श्री हरेकृष्ण की जय।

फिर तो उस कोलाहल में उसे इतनी मालाएं पहनायी गयीं कि उनके बोझ से वह दब गया।

वह उस दिन का नायक था।

———

८
मेले का मेल

(१)

ककरेजी शामियाने के नीचे एक ऊँचे मञ्च पर रामानन्दी तिलक लगाये गले में बेले की माला पहने एक हृष्ट-पुष्ट पण्डितजी पालथी मारे बैठे, हाथ-मुँह के साभिप्राय हाव भावों सहित कथा कह रहे थे। उनका कण्ठ सुरीला था। उनके कहने का ढंग प्रभावोत्पादक था। जिस बात को उठाते थे उसी में रस बरसा देते थे। एक तो रामायण यों ही क्या कम प्रभावोत्पादक है, फिर कहीं अच्छा कथावाचक मिल जाय! नास्तिक भी आस्तिक हो सकता है, पत्थर भी पिघल सकता है। इस कथावाचक में ऐसी

कौनसी करामात थी ! जब हारमोनियम के स्वर में मिलकर तबले की थपकियों से थपकती हुई उनके सुरीले कण्ठ की मृदु मधुर स्वर-लहरी थिरकने लगती थी तो श्रोताओं के हृदय एक अनिर्वचनीय आनन्द में उद्‌बुद होने लगते थे। वे 'देह गेह सब सन तृण तोरे' रामायण पर उस क्षण सब कुछ निछावर करने को सन्नद्ध प्रतीत होते थे। इसीलिए उनकी कथा में अपार भीड़ होती थी। चिन्तामणि भी इस अपरिमित मानव समुदाय में फटे पुराने कपड़ों से अपना सुन्दर शरीर ढके आकर एक कोने में बैठ जाता था। वह आज भी बैठा हुआ था।

अयोध्याकाण्ड में बनवास का प्रसंग चल रहा था। इधर पण्डित जी, अपने निजी ढंग में, स्वर में भक्ति और करुणा भर कर कहीं पुष्ट, कहीं कोमल, कहीं मन्द, कहीं तीव्र स्वर-रँग देते जा रहे थे—

"रघुकुल तिलक जोरि दोउ हाथा।
मुदित मातु पद नायेउ माथा॥"

हारमोनियम मानों उनके स्वर में बिजली का स्पर्श किए दे रहा था। तबला अपनी थपकियों से उसे श्रोताओं के हृदय में मर्म तक पहुँचाये दे रहा था। उधर सब उपस्थित जनता चुटीली होकर मानों साक्षात् उस दृश्य को देख रही थी—

और चिन्तामणि ! वह तो फूट फूट कर रो रहा था, वहाँ उसके मानस-लोक में पण्डित जी की कथा के राम चिन्तामणि में

बदल रहे थे और कौशिल्या का स्थान उसकी माँ वसुमती ने ले लिया था। उसे याद आया एक दिन ठीक इसी भाँति उसकी स्नेहमयी माता ने उसे ललक कर अपनी छाती से लगाया था। तब वह ७–८ वर्ष का था। वह प्रेम-विह्वल हो उठा। माता-पिता के गहरे प्रेम के संस्मरण उसे याद हो आये। वे सुखद दिन! उनके दुलार में उसके लिये संसार का वैभव भी तुच्छ था। पर आज क्या? वह अनाथ है। पहले उसके पिता गये, एक ओर की दीवाल गिरी। फिर उसकी वह माता! आह! सारा क़िला ही टूट गया। और वह ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही जीवन के कठोर आघातों के लिये निराश्रित रह गया।

चिन्तामणि का हृदय-जगत के एक दूसरे सूखे गर्म झोंके से शुष्क हो उठा। उसमें जैसे आग निकलने लगी। आँखों का पानी बिला गया, वे लाल हो आईं। उसे वहाँ गर्मी लगने लगी। अब उसे पण्डित जी की स्वर लहरी स्पर्श नहीं कर रही थी। वह अपने विचारों में डूबा था जैसे माँ की पिछली बातें ही सुन रहा हो। वह गर्मी से विकल होकर उठ पड़ा और घर की ओर चल दिया। उसका मानस एक रंग-मञ्च बना हुआ था। जिसमें कभी माता, कभी पिता आकर उपस्थित होते थे। और कहीं उसी रंग-मञ्च में एक कोने में से पण्डित जी की स्वर लहरी में वे शब्द गूँज उठते थे:—

" बार-बार मुख-चुम्बति माता।
नयन नेह जलु, पुलकित गाता।"

वह इसी प्रकार चलता हुआ एक बड़े फाटक के नीचे से होकर निकला, जिसके ऊपर गोल महरावदार टीन के लम्बे चौड़े बोर्ड पर लिखा हुआ था "स्पिनिंग एण्ड वीविंग मिल्स लिमिटेड"। वह बाँयी ओर दरिद्र झोंपड़ों में घुसा। एक जीर्ण शीर्ण झोंपड़े की टूटी चारपाई पर जाकर वह पड़ रहा।

"बार बार मुख चुँवति माता।"

उसने हाथ फैला दिये जैसे माता उसे गोद में चाह रही हो। पर न तो अब माता ही है, और न अब वह गोद के लायक़ है। अब वह २४ वर्ष का जवान पट्ठा है, जिसे फैक्टरी में कोयले ढोने के काम ने रूखा-सूखा बना रक्खा है। उसने माता पिता को भुला देने की चेष्टा की तो रामायण की याद आगयी। अहा, कैसी अच्छी पुस्तक है? वह उसे अवश्य ख़रीदेगा। उसने एक तिखाल में टटोला, एक रुपया हाथ पड़ गया। जब वह रामायण ख़रीद कर घर में बैठ उलटने पुलटने लगा तब उसने सोचा व्यर्थ दाम डाले। मैं इसे पढ़ तो सकता हो नहीं। वह वस्तुतः निरक्षर था। पुस्तक की प्राप्ति की प्रबल अभिलाषा में वह यह बिल्कुल ही भूल गया था कि वह बेपढ़ा है और पुस्तक केवल पढ़े लिखों के ही काम आ सकती है। वह तो पण्डित जी की कथा से प्रेरित होकर कुछ ऐसा समझने लगा था कि पुस्तक आते ही वह सारी बात जान जायगा। पर इस समय जो ज्ञान हुआ उससे उसे भारी धक्का लगा। निरक्षर होने से अपने ऊपर कितना अत्याचार होता है।

पुस्तक हाथ में है, आँखें हैं, दिमाग़ है, क्या नहीं ? ईश्वर की दी हुई सभी विभूतियाँ तो हैं। पर वह कहाँ है कि यह पुस्तक पढ़ी जा सके ? पुस्तक पर अक्षर थे पर उसकी आँखें उन्हें समझे तब न ? वह आज कितने बड़े आनन्द से वञ्चित रह गया·····।

(२)

प्रातःकाल मज़दूरों की उस बस्ती में बड़ा कोलाहल था। आज फैक्टरी की छुट्टी थी। शहर से थोड़ी दूर पर ही एक लक्खी मेला होता था। आज सभी वहाँ मेला देखने जायँगे। जो दो चार पैसे उन्होंने जुटा लिये थे वे अपनी गाँठ में बाँध बालक, युवक, बूढ़े, युवती, स्त्री सभी तड़के से ही तय्यारी करके मेले को चल दिये थे। यह उसी का कोलाहल था। चिंतामणि भी झुटपुटे में उठ बैठा। उसने भी मेले जाने का निश्चय कर लिया। वह दिन भर यहाँ पड़ा पड़ा क्या करेगा ? ज़रा मेले में तबियत बहल जायगी। उसने रामायण उठाली, भारी हृदय से उसने सोचा, चलो इसे भी बेच आयेंगे। एक ग़रीब आदमी को किताब की चीज़ रखना शोभा नहीं देता। उसे लगा जैसे कोई बड़ी भारी सम्पत्ति उसकी निरक्षरता के अपराध में उसके हाथ से निकली जा रही है। पर वह क्या करे ? उसके माता-पिता ने उसे नहीं पढ़ाया। वह तब बहुत छोटा था और उनके पास साधन कहाँ थे ? तब सरकार भी उनका कहाँ ध्यान रखती थी ? और उसे भी पढ़ने का लाभ आज तक विदित न था। बिना पढ़े लिखे ही लस्टम-पस्टम वह अपना पेट भरने लायक़ कमा लेता है तो पढ़

कर क्या करेगा ? वह यह सोच हो न सका था कि पढ़ने की आवश्यकता पेट भरने के लिये नहीं किसी और सन्तोष के लिए होती है। तो वह रामायण बेच ही आयेगा। उसने अपने कपड़े सँभाले। एक ओर एक गूदड़ में लिपटे कोट-पेण्ट थे। उन्हें पहन कर उसकी शोभा अठगुनी होगयी। वह वैसे ही बहुत सुन्दर था। बड़ी बड़ी जवानी के रस में भरी आँखें, सुन्दर नाक, छरहरा बदन, गोरा रँग, इन सबके ऊपर उसकी भँवें एक विशेष तनाव के साथ आँखों पर बैठी हुई थीं। उसका मुख निश्चय ही मादक सुन्दरता लिखे हुए था। गूदड़ों में भी, कालौंच के पुत जाने पर भी उसकी कमनीयता छिपती न थी। इस समय तो वह और भी निखर आई थी। इन सज-धज के कपड़ों ने तो उसे चमका दिया, उसे देखने वाले एक क्षण यह सोच सकते थे कि यदि कहीं यह सुख में पला होता तो यह सौन्दर्य विकसित होकर आदर्श बन जाता—

ख़ैर जैसा वह था, वह मेले को चल दिया। हज़ारों आदमी इधर से उधर फिर रहे थे। वहाँ के दृश्य को देखकर वह रामायण बेचना भूल गया। अनेकों विचार उसके मस्तिष्क में उठने लगे—वह यहाँ क्यों आया ? क्या इतने आदमियों का घूमना-फिरना देखने के लिये ? या अपनी मेहनत के रुपयों को इन बेईमान बड़े पेट वाले दूकानदारों को ठगाने के लिये ? दूकानों के सामने जाऊँगा, मन ललचायेगा, पर पैसा तंगी के कारण न निकाला जा सकेगा। मन क्षुब्ध होगा। किसी तमाशे के पास जाऊँगा, वहाँ भी यही दशा होगी। उसे ठीक याद आया :—

"पैसा नहीं है पास, मेला लगे उदास"

पर पैसा कितनों के पास है? जो कुछ पैसा है वह उपयोग के लिए है। अपव्यय के लिये और ठगाने के लिए नहीं। यहाँ सब ठगाना ही है। फिर इतने लोग क्यों आते हैं? उसने लौटने का इरादा किया। पर फिर झोंपड़ी का सूना और रूखा दृश्य आँखों में आते ही उसने निश्चय बदल दिया। हर्ज क्या है? एक चक्कर ही लगा लिया जाय। वह एक ओर से दूसरी ओर को चला। मेले की विलासिता से असन्तुष्ट होता हुआ वह आगे बढ़ता जा रहा था कि एक जगह ठिठक गया।

दो बदमाश एक ओर इशारा कर रहे थे। उधर एक दूकान पर एक सुन्दरी लड़की कुछ खरीद रही थी। इन बदमाशों का इशारा उसी ओर था। चिन्तामणि चुपके चुपके उनके कुछ पास जा खड़ा हुआ, तब उसे सुन पड़ा कि—

"यही है। अकेली अपनी मोटर में आयी है। जब मोटर की ओर बढ़े तभी·····"

चिन्तामणि समझ गया। इन बदमाशों का इरादा इस भली सुन्दरी लड़की को ले भागने का अथवा और कुछ करने का है। वह काँप उठा। क्योंकि उसको अपनी मजदूर बस्ती में ऐसी बीसों स्त्रियाँ हैं जो पहले किसी ऊँचे घराने की थीं। वे बदमाशों द्वारा पकड़ी गयीं। उनकी इज्जत मिट्टी में मिलायी गयी। और फिर सौंदर्य ढल जाने पर निकाल बाहर की गयीं। फिर गिरती-पड़तीं

मज़दूरी करके पेट भरने लगीं। ऐसी स्त्रियों का सारा जीवन कुछ नहीं रह जाता, वे केवल उसका बोझ ढोती हैं। हँसती हैं तो फूहड़ हँसी, बोलती हैं तो फूहड़ वचन! उनका स्त्रीत्व बरबस उनसे छीन लिया गया है। इस कुमारी को देखकर वह सारा जघन्य रूप उसकी आँखों में नाचने लगा। ऐसा भोला सौन्दर्य, और यों कुचला जायगा? पहले तो उसे उसके माँ-बाप पर क्रोध आया। कैसे हैं ये लोग जो लड़कियों को इस प्रकार भेज देते हैं अकेले। फिर सोचा आख़िर इसमें लड़की अथवा माता-पिता का दोष ही क्या है? यह तो प्रत्येक नागरिक का अधिकार है कि उसे हर स्थान पर जाने की सुविधा हो। वह सरकार को कर देता है इसीलिये कि उसकी रक्षा की जायगी, उसे कहीं ख़तरा नहीं रहेगा। तो फिर पुलिस को ध्यान देना चाहिए। पुलिस के मेले भर में चार-पाँच आदमी मिलेंगे। वे कठमुल्लों की भाँति खड़े खड़े इधर उधर मेला देखेंगे। उन्हें क्या फ़िक्र कि किसी पर क्या आफ़त आने वाली है? और ठीक ही है, उन्हें कैसे ख़बर हो? कोई सर्वव्यापक थोड़े ही हैं। हम लोगों को उचित है कि हम ही उन्हें इस बात की सूचना दें। प्रत्येक पुरुष का कर्तव्य है कि वह पुलिस की सहायता करे। पर पुलिस की ज़रूरत ही क्यों पड़े? ये बदमाश ही न रहें? आख़िर उसने सोचा ज़माना ख़राब है। जब तक मनुष्य इतना ऊँचा नहीं उठ जाता कि बदमाश रहें ही नहीं तब तक पुलिस की आवश्यकता रहेगी।

वह पुलिसमैन को तलाश करना चाहता था कि वह लड़की

दूकान से चल दी। वह लड़की का पीछा नहीं छोड़ सकता था। तेज़ क़दम बढ़ाकर वह उसके साथ हो लिया। लड़की ने और सामान के साथ बुनने की दो सलाइयाँ ली थीं। वे काग़ज़ में ढीली बँधी हुई थीं। उनमें से एक खिसक कर गिर पड़ी। लड़की धुन में आगे बढ़ रही थी उसे मालूम न हुआ। चिन्तामणि ने वह सलाई उठाई और लड़की के पास जाकर कहा—"देखिये।"

लड़की ने रुककर कुछ रौब में उसकी ओर देखा। उसने समझा था कि कोई उससे छेड़खानी करना चाहता है, अतः क्रोध था किन्तु चिन्तामणि के शान्त महिमामय सुन्दर मुख मण्डल को देखते ही उसका यह भाव दूर होगया। वह अचकचा कर कह बैठी—"अरे आप हैं!" चिन्तामणि को आश्चर्य हुआ "क्या आप मुझे पहले से पहचानती हैं?" लड़की को ख़ुद आश्चर्य था कि वह क्या कह बैठी है? उसे अन्तर में कुछ ऐसा लगा था कि ऐसा आदमी उसका परिचित ही हो सकता है, अपरिचित नहीं। मुख, आँखों और सूखे भुड़भुड़ाए बालों को एक बार चञ्चल लज्जा से उसने फिर देखा और जो ममत्व उसे उस ओर अनुभव हुआ वह आज तक उसे कभी न लगा था। वह लगभग अट्ठारह वर्ष की थी, कालेज में पढ़ती थी; सैकिण्ड ईयर में। वह बिलकुल अबोध न थी अनेकों सुन्दर युवक उसे मिले थे, अनेकों उसके सहपाठी थे, किन्तु किसी में उसने यह मोह अनुभव नहीं किया था। आज ऐसा क्यों? वह लज्जित हो गयी। वह हृदय की बात समझ गयी थी, फिर भी हिन्दू कन्या थी।

न वह स्वतन्त्र थी, न वह समझती थी यह युवक स्वतन्त्र है। उसने थोड़े करुण कोमल शब्दों में कहा—"मुझे कुछ ऐसा लगा कि आप अपरिचित नहीं हो सकते। आपके मुख पर यह सौहार्द्य और आपकी वाणी में यह ममत्व किसी और में नहीं मिल सकता—क्षमा कीजियेगा।"

चिन्तामणि ने उसी स्तब्ध भाव से कहा—"अच्छा, यह आपकी सलाई गिर पड़ी थी।"

कुमारी ने खेद प्रकट करते हुए सलाई ले ली और बार बार उसे धन्यवाद दिया। उसने कहा कि सलाइयाँ वह अपनी छोटी बहिनों के लिये ले जा रही थी। यह सलाई यदि न मिलती तो घर में बहिनों में आज खूब लड़ाई होती। उसे फिर लौट कर मेले में नई ख़रीदने आना पड़ता। आपने अच्छा किया, एक संग्राम बचा दिया।

चिन्तामणि को उसकी बातों में कुछ आकर्षण लगने लगा। वह चाहता था कि उन बदमाशों से रक्षा करने के लिये उसके साथ जाकर मोटर तक पहुँचा दे। उसने पूछा—"मैं आपके साथ यदि आपकी मोटर तक चलूँ तो क्या कुछ हर्ज है?" कुमारी भी यही चाहती थी। उसने कहा—"चलिए, कोई हर्ज नहीं।" वे लोग चल पड़े।

चिन्ता०—"आप अपनी मोटर यहाँ तक क्यों नहीं लायीं?"

कु०—"मेले में सिपाही ने आने की इजाज़त नहीं दी और

ठीक ही है। इस भीड़ में किसी के लगे करे। यातायात में विघ्न तो पड़ता ही।"

चिन्ता०—"और आपके साथ कोई आदमी भी नहीं?"

कु०—"हैं तो सही आप! वैसे हम लोगों को अकेले में कोई भय नहीं लगता। नौकर था वह कहीं मेला देखने में लग गया। अब उसे क्या अपनी हिफ़ाज़त के लिये पीछे पीछे लगाये रहती? हम लोगों को आप जैसे अच्छे नागरिकों की रक्षा का सदा ही भरोसा रहता है।"

चिन्ता०—"और बदमाशों का भय नहीं रहता, क्यों?"

मोटर का अड्डा मेले से एक फर्लाङ्ग दूर था। इस समय मेला भर रहा था; अतः एकान्त था। मोटरों के पास न शोर था, न कोई और व्यक्ति। बाईं ओर एक क़तार में मोटरें खड़ी दिखायी पड़ रही थीं। यकायक चार आदमी पीछे से ढक्का देते आये और कुमारी और चिंतामणि के बीच में पड़ गये। चिंतामणि तैयार था। उसने एक झपट्टे में ही दो को गिरा दिया। वह लड़की भी कम चतुर न थी। वह स्थिति समझ गयी। उसके पेटीकोट में कटार छिपी थी वह उसने तुरन्त निकाल ली। उसे कटार चलाने का मौक़ा न मिला। चिन्तामणि ने उन दोनों को भी दूसरे धक्के से गिरा दिया। वे चारों बहादुर न थे। वे चाल से अपना काम बनाना चाहते थे। पर ये लोग सतर्क होगये। वे धक्के खाकर एकदम भाग गये। उन्हें भय था कि कहीं पकड़ लिये न जायँ। कुमारी ने कटार

निकाल तो ली थी पर वह भयभीत होगयी थी। चीख़ चीख़ कर शोफर को आवाज़ दे रही थी। पर वह वहाँ कहाँ था। चिंतामणि ने स्वस्थ होते हुए कहा—" अब भय की कोई बात नहीं। आप स्वस्थ हों। अब आप निरापद हैं।"

वह होश में आयी। उसने बार बार कृतज्ञता प्रकट की, और चाहा कि उसे अपने घर ले जाय। पर वह तैयार न हुआ। उसने कहा—" इतने निष्ठुर न बनिए, आपने आज मेरी मर्यादा बचायी है। इस आभार से मैं अपना जीवन देकर भी तो मुक्त नहीं हो सकती। आप चलिए, एक बार तो घर चलिये। पिता जी आप से बहुत प्रसन्न होंगे।" पर चिन्तामणि को अपनी दुरवस्था का ज्ञान था। वह कुमारी की आँखों में और मुख पर तथा उसकी वाणी में जो बात देख रहा था, उससे उसे भय हो रहा था कि वह शीघ्र ही अपने मार्ग से नीचे आ गिरेगा। वह विवश हो जायगा और उसका परिणाम उसके लिये चाहे कुछ न हो, वह तो समाज की सबसे नीची सीढ़ी पर है, पर इस कुमारी का ठिकाना न रहेगा। अतः उसने अपने मन को रोक कर निष्ठुर होना ही उचित समझा। पर कुमारी पर उसका अहसान सचमुच बहुत हो चुका था। वह क्या करे? कुमारी तो एकदम विवश हो चुकी थी।

शोफर आगया। वह मोटर में बैठी, उसने फिर आग्रह किया और जब उसने देखा कि यह किसी भाँति डिगने का नहीं, तो पूछा—" आप पढ़े लिखे तो हैं न?"

चिन्तामणि को न जाने किस कमज़ोरी ने दबा लिया। वह कह बैठा—" हाँ। "

कुमारी—" तो अपना पता दीजिए, मैं आपको पत्र लिखूँगी। बोलिये, पता दीजिये, क्या आप इतना भी न करना चाहेंगे ? " अहसान से और प्रेम से भी, क्योंकि सचमुच वह प्रेम में डूब चुकी थी, आग्रह करते करते उसको रोना आगया। वह कह रही थी—हाय राम ! किस चट्टान से मेरा सिर टकरा रहा है। पर क्या करे—

चिन्तामणि चिन्ता में डूबा हुआ था। पर कुमारी की आँखों में उन आँसुओं को देखकर उसने पता बता दिया—

चिन्तामणि,
जिनिंग एण्ड वीविंग मिल्स।

और बिना उधर देखे, दूसरी ओर तेज़ी से चला गया।

वह लड़की इतने आवेग में थी कि उसके आँखों से ओझल होते ही ढेर होकर मोटर के गद्दों में गिर गयी। रह रह कर उसके हृदय में टीस उठती थी–" हा ईश्वर ! आज यह क्या होगया ? " मोटर चल पड़ी।

× × ×

उस दिन चिन्तामणि को अपनी भारी भूल मालूम हुई, और उसे अपने ऊपर घृणा भी हुई, जिस दिन एक रजिस्टर्ड पत्र उसे

मिला। ओह! निरक्षरता का अभिशाप! वह समझा था अवश्य ही यह पत्र उस लड़की का है। कैसा अच्छा होता यदि वह पढ़ा होता? और यदि वह कुपढ़ था तो क्या उसे न चाहिए था कि उस लड़की से साफ और सच कह देता कि वह पढ़ा लिखा नहीं। वह क्यों तो बेपढ़ा है, और फिर क्यों वह झूँठ बोला? इस पत्र को हाथ में लिये वह उस लड़की की याद करता हुआ उस रात सो गया। लज्जा के कारण वह उस पत्र को किसी के सामने पढ़वा भी नहीं सकता था। इसी प्रकार एक सप्ताह बीत गया और उस पर एक मुक़दमा चलाये जाने का दावा हुआ।

एक बार अपनी झोंपड़ी बनवाने के लिये अपनी जाति के ही एक सेठ लक्ष्मीचन्द से उसने ५०) रुपये उधार लिये थे। वह अपने वेतन में से काट कर उन्हें चुकाना चाहता था। यह दावा उन्हीं सेठ जी ने किया था। रुपया वह चुका नहीं सका था। आख़िर कोर्ट में वह पेश किया गया। वहाँ उसने देखा सेठ जी तो थे ही उनके साथ वही मेले वाली लड़की भी वहाँ थी। चिन्तामणि ने उसे वहाँ देखा—लज्जा से उसका मुँह काला पड़ गया। ओह, क्या इस लड़की के पिता हैं ये सेठ जी? अब लड़की को उस पर कितनी घृणा होगी। ईश्वर, तूने यह कैसा दैवयोग जुटाया है?—

चिन्तामणि को बताया गया गया कि एक सप्ताह पूर्व रजिष्ट्री द्वारा तुम्हें वह ख़बर दी गई थी कि तुम रुपये अमुक तारीख़ तक

चुकादो। क्योंकि तुमने रुपये उस दिन तक नहीं चुकाये इसलिये मुक़द्दमा चलाया गया है। रुक्के की मियाद निकल जाने का डर है। तुमने २००) रुपये लिए थे।—

चिन्तामणि—" २००) रुपये ? "

" हाँ, दो सौ का रुक्का तुमने लिखा उस पर कुछ व्याज पड़ी है, इस प्रकार २५०) रुपये का दावा है। "

चिन्तामणि की आँखों में आँसू भर आए। वह यह क्या देख रहा है ? यह सब निरक्षरता के कारण है। सेठ जी ने ५०) देकर २००) रुक्के में लिखे। उनका भेजा हुआ नोटिस न पढ़ सका। उसने सिर ठोक लिया। बड़े दीन शब्दों में उसने कहा--महोदय, मैंने केवल ५०) रुपये लिए थे। मैं बेपढ़ा लिखा हूँ। मेरे साथ फरेब करके ५०) की बजाय रुक्के में २००) लिखे गये हैं। मैं मज़दूर इतना कहाँ से ला सकूँगा ?--

लड़की ने जब चिन्तामणि को कोर्ट में देखा तो वह बदहवास होने लगी थी। वह अपने मन को रह रह कर समझाती थी कि, ऐसा इसमें क्या है ? यदि उसे सचमुच प्रेम ही है, तो फ़ैसला हो जाने पर वह मियाद डलवा देगी और स्वयम् रुपये देकर इस भले युवक को छुड़ा देगी। इसने उसकी जान बचाई है; वह उसे बचाएगी। पर वस्तुतः देर हो चुकी थी। उसे पहले ही देखना चाहिये था। उसे क्या पता था कि यह इसी चिन्तामणि का मामला है। वह क्षण क्षण घबड़ाई जा रही थी। चिन्तामणि को

उस अवस्था में देख देख कर उसका कलेजा मुँह को आरहा था कि उसके कान में सुनाई पड़ा—

"मैं बेपढ़ा लिखा हूँ"—ओह ! ओह ! उसका स्वप्न चकनाचूर हो गया—उसका हृदय पके फोड़े के भाँति टीसने लगा। वह चीख मार कर बेहोश होगई।—

चिन्तामणि फूट फूट कर रो उठा।

ओह ! निरक्षरता का अभिशाप !!

———

६

मेरा चोर

डाकगाड़ी से मैं रात में खुर्राटे भरता हुआ इलाहाबाद जा रहा था। एक स्टेशन पर गाड़ी ठहरी। मैं यह भली भाँति समझता था कि वह इलाहबाद नहीं, क्योंकि अभी रात बहुत थी। इस लिये मुझे इस स्टेशन के सम्बन्ध में कोई उत्सुकता न थी। किन्तु गाड़ी रुकने से कुछ नींद उचट गयी थी।

और मैं अभी यह सुन रहा था—"पूड़ी साग गरम", "गरम चाय", "चाय गरम", "पान बीड़ी सिगरेट"। इस तुमुल ध्वनि को धक्कासा लगाता मेरे दर्जे का दर्वाज़ा खुला और मैले कुचैले

फटे फटाये कपड़े पहने एक नवयुवक उसमें चुपके से घुस आया। अपने पीछे उसने दर्वाज़ा भी अचक से लगा दिया।

दर्जे में सभी यात्री सो रहे थे। कोई पैर सिकोड़े, कोई फैलाये, कोई अपने घुटनों में मुँह दिये, कोई खिड़की पर हाथ का तकिया बनाये, कोई पैरों को खिड़की पर पसारे, गरज़ यह कि सभी अपनी अपनी तरह पड़े रेल की नींद का मज़ा ले रहे थे। कोई खुर्र कर रहा था, कोई खों, कोई हलकी 'फुँ' करता था तो कोई 'सरर कुँ'। विविध नासिकोच्छ्वासों का शब्द उस दर्जे में गूँज रहा था। उस आदमी को चुपके से घुसता देखकर मैं ताड़ गया कि यह अवश्य चोर या उठाईगीरा है। मैं चुप पड़े पड़े यह देखने लगा कि यह क्या करता है। जब यह सामान ले चुकेगा तभी पकड़ कर पुलिस के हवाले कर दूंगा। इस प्रकार मेरा नाम भी हो जायगा। तो, उस आदमी ने चारों ओर सबको सोता देखा, फिर चुपके से सिमिट-सिमटा कर मेरे पट्टे के नीचे घुसने लगा। अब तो इसमें सन्देह ही क्या रह गया कि यह चोर था। नीचे मेरा ट्रङ्क रक्खा हुआ था। उसमें वे गहने रक्खे हुए थे जो गौने पर मेरी स्त्री को पहनाए जाने वाले थे। ऐसे सुन्दर गहने, उन्हें पहन कर मेरी स्त्री का सौन्दर्य कैसा निखर उठेगा—उसकी सौन्दर्य-श्री कैसी चमचमा उठेगी? यह मैं अपने प्रथम यौवन की रंगीन कल्पना में देख कर उन्मत्त हो चुका था और एक सुखी मादकता में अब भी डुबकी लगा रहा था कि यह चोर, वह भी मेरे ही गहनों का—

कालेज में मैं फ़िलासफ़ी का विद्यार्थी था। अभी तक, यद्यपि, कोई मैंने पेड़ से ऐसा सेब पृथ्वी पर गिरते न देखा था कि न्यूटन हो जाता; पर प्रत्येक घटना कोई न कोई विचार पैदा किए बिना मेरे सामने से न जाती थी—चोर मेरे लिये एक समस्या थी। चोर क्यों ? कैसे होते हैं, ये दूसरों के अधिकार को हड़पने के लिए सदा तत्पर ! उन्हें चोर बनाया किसने ? क्यों बन गये ये चोर ? चोर की इस समस्या ने मुझे इस प्रकार जिन कई कारणों से जकड़ लिया था उनमें से एक यह भी था कि अभी सुबह इलाहाबाद को रवाना होने से पहले मैं अपने एक मित्र से जब विदा माँगने गया तो उसकी मेज़ पर "अपराध-चिकित्सा" नाम की पुस्तक रक्खी देखी। नाम कौतूहलवर्द्धक था। मैंने मित्र से कहा कि यदि आपका हर्ज न हो तो इस पुस्तक को ले जाऊँ। शायद रास्ता आसानी से कट जाय। मित्र ने कहा—मेरे पास तो जब से आई है, यों ही पड़ी है; ले जाओ।

मैं उसे पढ़ता आरहा था और एक जगह के शब्द विशेष रूप से मेरे दिमाग़ में चिपके रह गये थे, वे ये थे—

"एक आदमी दिन भर महनत करके भी जब अपना और अपने परिवार का पालन नहीं कर सकता और उसके स्वयम् भूखा रहने तथा बाल-बच्चों को जठराग्नि की ज्वाला से व्याकुल देखने का अवसर आता है तब वह यदि अत्यन्त निराश न हो गया हो, तो उसके लिए भिक्षा या चोरी का मार्ग खुला मालूम होता है। ऐसे व्यक्तियों में से, जो आदमी स्वभाव से या क़ानून-

वश भिक्षा नहीं माँग सकता, या जिसे भिक्षा नहीं मिल सकती, वह चोरी का अवलम्बन करे तो क्या आश्चर्य है ?"—मुझे चोरों के प्रति कुछ सहानुभूति हो रही थी, और मैं यह सोचने लगा था कि हमारा समाज ही उसके लिये दोषी है। पर इस चोर को देख कर मुझे भय उत्पन्न हुआ और मेरी विचार धारा कुछ बदल गयी। ये नागरिकों को कितने दुःखदायी हैं। कोई भी निःशङ्क बाज़ार में नहीं चल सकता, रेल में नहीं जा सकता, पुलिस आदि सबसे कुछ करते धरते नहीं बनता। मैं सोचते सोचते एकदम चौकन्ना होकर उठ बैठा और झुक कर उस आदमी के दोनों हाथ पकड़ कर पूछा—क्या है ?

एकदम मशीन की भाँति मैंने यह सब कर डाला। मैं सोच ही रहा था कि मेरे ट्रङ्क के कुन्दे के खटने की आवाज हुई। मेरे रोंगटे खड़े होगये। मैं बिस्तर पर उछल पड़ा। मुझे लगा कि मेरी सुन्दर स्त्री बिना आभूषणों के रो रही है। मैं लुट गया हूँ। मेरा ताला तोड़ दिया गया है। लपक कर बदहवास होकर मैंने उस आदमी के हाथ पकड़ लिये। वह घिघियाता हुआ बोला—"बाबूजी मुझे बचाइये"। मैंने कहा—"चोर।" उसने कहा—"नहीं बाबूजी चोर नहीं, मैं आपत्ति का मारा हूँ। इस स्टेशन से छिप कर कहीं दूर चला जाना चाहता हूँ"—

"झूँठ, तुम चोर हो। तुम्हारे पास टिकट है ?"

"टिकट नहीं ! पर उसकी भी एक कथा है; बाबूजी। आज

जो मुझे इस रूप में जाना पड़ रहा है उसकी भी एक कहानी है, वरना मैं कभी अनागरिक कार्य करने वाला आदमी नहीं। मैं भली प्रकार जानता हूँ कि नागरिकता उच्च नैतिक नियमों को स्वेच्छा से पालन करने का ही नाम है। मैं इसलिये कभी उचित मार्ग को छोड़कर कुमार्ग से नहीं गया हूँ, कभी रेल में बिना टिकिट नहीं बैठा हूँ, कभी हराम की कमाई नहीं खाई, कभी ईमानदारी के परिश्रम से मुख नहीं मोड़ा। फिर भी—

इतना कहते कहते वह रो उठा था। उसका हृदय गले तक भर आया था। उसकी आँखों की गरम बूँदें मेरे हाथ पर गिरीं तो मेरे हाथ शिथिल हो गये। उसकी बातें एक पढ़े लिखे सुसंस्कृत भावुक मनुष्य की सी थीं। वह समझदार था और उसके शब्द शब्द में सच्चाई का बोझ प्रतीत हो रहा था। मैंने उसे अपनी गद्दी पर बिठाया। गाड़ी चलदी थी। उसने एक गहरी साँस ली।

मुझे उसकी कथा में वेदना प्रतीत हुई, उसने मेरा हृदय छू लिया था। उससे आगे की बात जानने के लिये प्रश्न पूछा। फिर तुम्हारे पास टिकिट क्यों नहीं?

"मुझसे टिकिट छिना लिया गया।"

"कैसे?"

"मैं टिकिट खरीद कर सुबह की गाड़ी से इलाहाबाद जाने के लिये इस प्लेटफ़ार्म पर आया। कपड़े मेरे फटे हुए थे जैसे अब हैं। आखिर जैसे कपड़े मेरे पास हैं ईमानदारी के परिश्रम

से कमाये हुए वैसे ही तो पहनूँगा। मेरा अपराध यह है कि बी० ए० होकर मैंने कहीं नौकरी करके रिश्वत मारने और ऊँची तनख्वाह पाने का यत्न क्यों न किया--"

मैं चौंका--यह बी० ए० हैं! यह तो विचित्र आदमी है। चोर की भाँति घुसा, ग़रीब की भाँति रोया और अब बी० ए० बन रहा है। मुझे और मेरे अनुभव को पग पग पर धक्का दे रहा है। पर मैं कुछ बोल न सका क्योंकि वह कहे जा रहा था और उसकी कथा में मुझे रुचि बढ़ सी रही थी--

"पर मैं उस जीवन को घृणा नहीं करता। ऐसे वेष में चोर समझा गया हूँ तो भी मुझे अपना अपमान अनुभव नहीं हुआ क्योंकि सच्चाई को आँच नहीं होती। तो, जब मैं प्लेटफ़ार्म पर टहल रहा था तो बाच एण्ड वार्ड के आदमी की निगाह मेरे ऊपर पड़ी। उसे मुझ पर सन्देह हुआ कि मैं उठाईगीरा हूँ। मैं फटे कपड़े जो पहने था, और उठाईगीरा के लक्षण हैं फटे कपड़े! यह इन सिपाहियों का मनोविज्ञान है समझे बाबू जी! आप थोड़ा विचार कर देखिये अधिकाँश भारत ऐसे ही चीथड़ों में जीवन व्यतीत कर रहा है और सिपाही उन सबको चोर समझ सकते हैं जबकि वे सचमुच साहूकार हैं। नहीं, साहूकारों को बनाने वाले हैं। वे मज़दूर किसान अपने खून का पानी देकर ही तो इन सफ़ेद पोशों को सींचते हैं, ये सफ़ेदपोश क्या सचमुच लुटेरे नहीं?"

--उसका आक्षेप बहुत व्यापक हो गया था। उसके शब्दों

के घेरे में मैं भी तो आरहा था अतः मेरे मुँह की ओर थोड़ी देर ताकने के लिये वह रुक गया।

मैंने कहा—" आप ठीक ही कह रहे हैं। हाँ! "

" हाँ, उसने शक़ में मुझे गिरफ़्तार कर लिया। मेरे पास टिकिट था। वह मैंने उसे दिखाया तो कहा—अबे हमने तुझ जैसे हज़ारों चराये हैं। बोल टिकिट के पैसे कहाँ से चुराये ? "

" स्टेशनमास्टर उसी गाँव के रहने वाले थे जिसमें मैं रह रहा हूँ। वे मुझे भली भाँति जानते थे किन्तु मेरे पक्के शत्रु हो रहे थे। वे मुझे फूटी आँखों ज़िन्दा नहीं देख सकते थे। वाच एण्ड वार्ड के सिपाही ने मुझे उनके इशारे पर ही पकड़ा था। उन्होंने चट मुझे पुलिस में दे दिया। पुलिस अपनी कारिस्तानी क्यों न दिखाती ? उसने मुझे पक्का बदमाश समझा और मुझे अपनी चतुराई में उन्होंने ऐसी ऐसी जगहों पर घूमते—चोरी करते पाया था जिनको मैंने स्वप्न में भी न देखा था, न सुना था। उन्होंने मुझे खूब ठोका, हुद्दे दिये। आप देखिये।"

उसका सारा शरीर सूज सा रहा था। मुझे भी उस पर दर्द हो आया। " ठोकने पीटने पर मैं यह न बता सका कि पैसे कहाँ से चुराये। मैंने अपना पता बताया तो विश्वास नहीं किया। हवालात में बन्द कर दिया और शाम को मुझे उसमें से निकाल बाहर किया। और कहा—जा, तुझे छोड़े देते हैं, अब चोरी न करना। मेरा टिकिट मुझे न लौटाया गया। मुझे सुबह तक हर

हालत में इलाहाबाद पहुँच जाना है। टिकिट के अलावा मेरे पास पैसे नहीं थे। पैसे होने पर भी स्टेशनमास्टर मुझे सही सलामत जाने देता इसमें शक था। अतः मुझे इस प्रकार से स्टेशनमास्टर से छिप कर इस गाड़ी में आना पड़ा है। मैं समझता हूँ मैंने अनागरिक काम नहीं किया। मैं इलाहाबाद तक जाने का किराया दे चुका हूँ। मुझे वहाँ तक जाने का अधिकार है। क्योंकि उस अधिकार का पास मुझ से छीन लिया गया है इसीलिये मुझे यह अनैतिक, अनागरिक नहीं, मार्ग ग्रहण करना पड़ा है। ऐसी दशा में आप भी मुझे चोर·····"

मैंने उससे क्षमा चाही। पर उसके बी० ए० होने पर मुझे बहुत आश्चर्य हो रहा था। मैंने अब पूछा—"आप बी० ए० हैं और फिर ऐसी अवस्था में?"

उसने कहा—"बाबू जी लम्बी कहानी है, आप सुनेंगे? क्या करेंगे सुनकर?

रहिमन निज मन की बिथा मन ही राखौ गोय।
सुनि इठिलइहैं लोग सब बाँटि न लैहैं कोय॥"

मैंने उससे बहुत आग्रह किया। तो उसने कहा—खैर; मार्ग कट जायगा। संक्षेप में सुनाए देता हूँ।

उसने कहा—"मैं·····शहर के सेठ·····का लड़का हूँ। दो साल हुए मैंने बी० ए० पास किया है। मैं जब बी० ए० में था तो चार पाँच विद्यार्थियों ने मिलकर यह तय किया कि एक उत्तर-

भारतीय-यात्री दल बनाया जाय। पढ़ा बहुत था। अर्थशास्त्र और भारतीय राजनीति में रुचि भी थी। देश की अवस्था का प्रत्यक्ष ज्ञान करना चाहते थे। बी० ए० की परीक्षा देकर हम लोग साईकिलों पर चल दिये। एक रात हमें एक गाँव में ठहरना पड़ा। वहाँ की हालत देख कर मुझे बड़ा दुःख हुआ और उसने मेरा जीवन बदल दिया। जब हम पहुँचे तो बड़ा हँगामा हो रहा था। हमें खबर मिली कि आज भँगियों के चौधरी को गाँव के मुखिया ने जूतों से इतना पिटवाया है कि बेहोश होगया है। अब सारा कुआँ साफ़ कराया जा रहा है। उसकी मुंडेरें भी नयी बनेंगी। इन महतरों ने उसमें से पानी खींच लिया था। बात यह थी कि गाँव में सभी कुँए ऊँची जाति वालों के थे। भंगी ग़रीब थे। वे पानी माँग कर भर ले जाते थे। कल चौधरी का परिवार किसी रिश्तेदारी से लौट कर रात को आया। शराब, माँस बहुत खा आया था, बेतरह प्यास सता रही थी। सबसे छोटा लड़का तो प्यास के मारे दम तोड़ रहा था। उसका तालू चटका जा रहा था और घड़े सूखे पड़े थे। अब क्या करें? किसी पड़ौसी के पास सबको सन्तुष्ट करने के लिये पानी कहाँ? चौधरी गिरता पड़ता कुँए की ओर गया पर इतनी रात को कोई कुँए पर क्यों होता? उसने कुछ एक से पानी माँगा भी पर फटकार ही खाई। "आया है रात में पानी वाला, दिन में आना।" उन आराम से सोने वालों को उसके कष्ट का क्या पता था? चौधरी प्यास से विवश होरहा था। वह अपने प्राण बचाने के लिये अन्धा होगया और उसने

स्वयम् कुँए से खींचकर पानी पिया और सब घर वालों को पिलाया। वह जानता था इसका परिणाम क्या होना है ? भय से रात भर उसे नींद नहीं आई। पर वह और करता ही क्या ? भेद खुल गया और मुखिया ने इस भीषण अपराध में उसे जूतों से सुजा दिया और कहा कि गाँव छोड़ कर चले जाओ।

" जब वह बेहोश घर को लेजाया जा रहा था तब हम वहाँ पहुँचे। हमारा हृदय करुणा और श्रद्धा से उसी भंगी की ओर आकर्षित हो गया। हमें उन गाँव वालों से इतनी घृणा हुई कि हम अपना वर्ण अवर्ण भूलकर भंगी के साथ हो लिये। हमारी पार्टी में एक डॉक्टर महोदय भी थे। हम नवयुवक सभी काम्मा-पालिटन विचार के थे। विश्वबन्धुत्व के विचार हमारे अन्दर थे। हम करुणा प्रेरित वहाँ ठहर कर भंगी की सुश्रूषा करने लगे। सब भंगियों को आश्चर्य हुआ। उन्होंने हमें बहुत रोका पर हम न माने हमने उन्हें आज्ञा दे देकर अपने मनोनुकूल घर साफ़ कराया। वहीं उनके मुहल्ले में जो दुर्गन्धि से परिपूर्ण था, हम ठहर गये। हमारे हृदय पर चोट गहरी लगी थी। हम यह कभी नहीं सोच सके थे कि इन अछूतों का दासत्व इतनी हीन कोटि का है। हिन्दू और आर्य जाति के गौरव को हमने बड़े गर्व से सुना और समझा था, और अर्थशास्त्र की दृष्टि से शूद्रों को श्रम-विभाग का एक अंग माना था। छूताछूत को भी हम इतनी भयङ्करता से न देख सके थे क्योंकि वह तो किसी न किसी रूप में ऊँचे वर्णों में भी विद्यमान है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सभी अपने

अपने लिये ऊँचे और पवित्र बनते हैं। एक दूसरे का छुआ न खाना तो साधारण बात है। किन्तु आज की घटना ने तो हमारी आँखें खोलदीं। ओह! इन ग़रीबों को साधारण नागरिक अधिकार भी नहीं। पानी, जीवन का सबसे आवश्यक अंग, वह भी ये स्वयम् नहीं खींच सकते। भोजन, दूसरा आवश्यक अंग, उसके लिये ये बड़ों की जूठन पर निर्भर! किसी जाति ने अपने दुश्मनों को भी ऐसी गर्हित दासत्व शृङ्खला में न बाँधा होगा और यह आर्य जाति ने किया! कलङ्कित आर्य जाति! किसी के मानवी और नागरिक अधिकार छीनने की प्रमत्तता को क्या नाम दिया जाय? भारत का रहने वाला प्रत्येक भारतवासी है। उसकी प्रत्येक प्राकृतिक देन पर उसके सब पुत्रों का एक-सा अधिकार है। फिर जीवन की आवश्यकताओं को तो छीनना महापाप है और आज उसने कष्ट में प्राण बचाने के लिये अपने उस जन्म-सिद्ध स्वाभाविक अधिकार का उपयोग किया तो यह सज़ा! उलटा चोर कोतवाल को डाँटे।..... हम वहीं रहने लगे। लोगों ने हमें समझाया हम ऐसा अनर्थ न करें। हिन्दू धर्म रसातल को चला जायगा। ईश्वर नाराज़ हो जायगा। पर हम दृढ़ थे। उच्च वर्ण वालों ने आख़िर हमें भी पीटने का आयोजन किया किन्तु इस बार महतर सब मिल गये। हमारे पहुँच जाने से उनमें एका हो गया था। हमने वहाँ पाठशाला खोलदी। महतरों के लड़के-लड़की पढ़ने लगे। किन्तु गाँव के ऊँचे लोगों को यह सब बुरा लग रहा था। उन्होंने महतरों को पानी देना बन्द कर दिया। रोटी देना बन्द कर दिया। हमने देखा यह युद्ध बिना ठने न रहेगा। हमने सलाह

दी कि पास पड़ौस के सभी महतरों को अपने गाँव में बुला लो। पास पड़ौस के गाँवों से आ आकर सभी महतर उस गाँव में बसने लगे। इधर हमारी पाठशाला का काम ज़ोरों से चल रहा था। महतरों से कह दिया गया कि यदि ऊँचे लोग आपको पानी नहीं देना चाहते तो कुँआ खोदो। उन्होंने कुँआ खोद लिया। पानी का कष्ट तो दूर हो गया। सब ने मिलकर बहुत सा रुपया इकट्ठा कर, एक सहकारी बैंक चलाई और ज़मीन मोल ली। महतर किसनई करने लगे। उन्हें और व्यवसाय भी सिखा दिये। उनकी एक पञ्चायत बनादी गई। उन सबने शराब और माँस खाना छोड़ देने की प्रतिज्ञा की। गाँव वालों ने बहुत हाथ पैर पीटे, कई वारदातें हुईं। इन्हीं ऊँचे लोगों में से एक यह स्टेशनमास्टर साहब थे। गाँव भर में यही एक पढ़े लिखे थे। इन्हें हमने समझाया कि आप इतने कठोर न बनिये। इनको सिविल लिबर्टीज़, इनके जन्म सिद्ध अधिकार दीजिए। इन्हें योग्य नागरिक बनाने में मदद दीजिए। इन्हें सभ्य और सुशिक्षित बनाइये। पर आपको भय था कि फिर ये हमारे सर पर चढ़ेंगे, नीच जाति; फिर इनका काम हमें करना पड़ेगा और जब महतरों ने अपना काम बन्द कर खेत करना तथा अन्य चीज़ें बनाना शुरू कर दिया तो अब ये क्या करें? अब तो इनका भय सचमुच इनके सामने आगया। स्वयम् महतरों का काम करना पड़ा। आलस्य से उतना न कर सके तो गाँव गन्दगी से भिनभिन करने लगा। ये लोग और उनमें सबसे अधिक ये स्टेशनमास्टर साहब हम पर दाँत मिसमिसाते थे। आज उसी का दण्ड भुगता है। देह सूज रही है।

"आखिर कल ऊँचे लोग झुके हैं। उन्होंने कहा कि नहा धोकर यदि महतर भी आवें तो पानी भर सकेंगे। वे पढ़ लिख सकेंगे, पञ्चायत में बराबर बैठ सकेंगे। उनको सब नागरिक अधिकार दिये गये। इस समझौते से स्टेशनमास्टर साहब की झुँझलाहट और भी बढ़ गई है·····"

मैं अवाक् था। मैं भी छूआछूत का भाव अच्छा नहीं समझता। मैं चमारों तक जाकर रुक जाता था, महतरों के प्रति मुझे साँस्कारिक घृणा थी। इस शताब्दी में इतनी जल्दी, केवल दो साल में आप महतरों को अधिकार दिला सकेंगे, छूआछूत दूर कर सकेंगे·····।

मैंने कहा—"झूँठ, बड़े गप्पी हो।"

स्टेशन आगया था। प्रातःकाल की लालिमा से इलाहाबाद का स्टेशन रंजित हो रहा था। मैंने देखा खद्दर धारियों की अपार भीड़ स्टेशन पर एकत्र है। सभी के हाथ में मालाएं हैं। मैं बड़ा उत्सुक था, आज क्या इस ट्रेन से महात्मा गाँधी या जवाहर या कोई बड़ा देश-भक्त नेता आया है क्या? देखूँ—गाड़ी ठहरी ही थी। उस युवक ने कहा—

"आप झूँठ समझते हैं, झूँठ ही समझिए" और वह खिड़की खोलकर उतरा ही था कि भीड़ उसी पर टूट पड़ी—

वह युवक मालाओं से लद गया।

अरे! मेरा चोर तो नेता बन गया।

१०

बिखरा स्वप्न

× × ×

रात्रि—१०.४०

इन्दिरा रानी,

यद्यपि अभी तक मैं अपनी वकालत के काग़ज़ों के देखने में और मुवक्किलों के समझाने-बुझाने में लगा हुआ था, पर हर क्षण तुम्हारी सुनहरी मुलाक़ात का सजीव पर्दा मानो इन सब बातों के पीछे पड़ा हुआ इस नाटक को रंगीन बनाए हुए था। तुम मेरे रोम रोम में रस बन कर रम रहीं थीं और जैसे वह झगड़ा समाप्त हुआ कि तुम स्मृति में पीछे न रहकर आगे आगईं।

रेल के सफ़र में हम लोग केवल एक दिन और एक रात साथ रहे, फिर भी इतने अवकाश में मुझे ऐसा लगने लगा है कि हम आपस में एक दूसरे से अनन्य और अनन्तकाल से परिचित हैं। तुम्हारी बातों से मैंने जान लिया कि तुम्हारे माता-पिता अथवा अन्य कोई कुटुम्बी तुम्हारी देख भाल करने वाला या तुम पर अनुशासन करने वाला नहीं। तुम अपना मत स्वयम् बनाने वाली हो। मेरे भी माता-पिता-कुटुम्ब नहीं, मेरा यदि कोई कुटुम्ब है भी तो अनाथालय है। जिसमें मैं पैदा होने के बाद से ही पाला गया हूँ। तुम तो शायद यह जानती भी होगी कि तुम्हारे पिता कौन थे, माता कौन थीं? पर मैं कुछ भी नहीं जानता। न मेरे लिये कोई स्थान पितृ-स्थान है, न मातृ-स्थान है। पिता और माता दोनों ओर से ही मुक्त-स्वच्छन्द मैं केवल भारत का होकर जन्मा हूँ। समाज ने मुझे पाला है, सारा समाज ही मेरा माता-पिता तथा कुटुम्ब है, इसलिये मैं भी पूर्ण स्वतन्त्र हूँ। अनाथालय ने पाल-पोस कर मुझे कुछ कारबार करने योग्य बनाया। अपने परिश्रम की कमाई से मैं स्वयम् एम. ए., एल-एल. बी. करके वकील हुआ हूँ। जगत में बिलकुल अकेला, कुछ नौकरों पर आश्रित रहने वाला तथा समाज की करुणा-प्रेरित प्रेम-सहानुभूति से संवलित। मुझे स्वाभाविक प्रेम कहाँ मिला है? दया मिली और उससे मैं उकता गया हूँ। मेरा हृदय किसी अभाव में विकल हो उठता है, और मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, धृष्टता क्षमा—कि तुम मेरा अभाव शायद दूर कर सकती हो। कुछ घण्टों में तुमसे जो प्रेम मुझे प्राप्त हुआ

उससे मैं विभोर हो उठता हूँ। क्या तुम·····क्या मैं साहस करूं कि·····नहीं, क्या मैं इतना सौभाग्यशाली हो सकता हूँ कि आपका चिर प्रेम पा सकूँ। मैं फिर क्षमा चाहता हुआ यह कहना चाहता हूँ कि मैं यह कहने का साहस आपको अपमानित करने के लिये नहीं कर रहा और मैं केवल उच्छृङ्खल प्रेम-सम्बन्ध में नहीं पड़ना चाहता। मैं तो पूर्ण उत्तरदायित्वपूर्ण गम्भीर दाम्पत्य प्रेम की भिक्षा चाहता हूँ। मैंने तुममें वे गुण पाये हैं जो मुझे बल-शक्ति प्रदान करेंगे जो मेरा अभाव दूर कर सकेंगे। कुछ काल की मुलाक़ात के बाद ही ऐसा पत्र पाकर यह न समझना कि उँगली पकड़कर पहुँचा पकड़ रहा हूँ। तुमको पूर्ण अधिकार है कि निर्दय होकर मेरे प्रस्ताव को ठुकरा दो, यदि अनुचित समझो या दोष पाओ। मैं धर्म, जाति और फ़िरके सभी से ऊपर नागरिक विचार को महत्व देता हूँ। हमारा भारत अब धार्मिक राष्ट्र नहीं रहा। अब वह राजनैतिक राष्ट्र है जिसमें विभिन्न-वर्ग-समुदाय, धर्म तथा जाति के लोग राष्ट्रीय दृष्टि से एक हैं। अब हमको धर्म से पहले राष्ट्रीय समस्याएं सुलझानी हैं। उसके लिए मैं विवाह में किसी अस्वाभाविक बन्धन पसन्द नहीं करता। जिस संगी में भी हम ऐसे गुण पा सकते हैं कि उसके फलस्वरूप उच्च नागरिक पैदा हों, बलशाली और भारत को अपना समझने वाले; तो उस संगी के लिये जाति-धर्म की अड़चन न पड़नी चाहिए। हमारी जाति भारतीय होनी चाहिए। धर्म हरएक का अलग अलग भी हो सकता है यदि वह नागरिक धर्म के विरुद्ध न हो। और

मैं तुममें वह सब गुण पाता हूँ और यदि तुम कहने दो तो उस सबके साथ मैं तुम्हें प्रेम भी करने लगा हूँ।

इस पत्र से तुम समझ सकती हो कि मुझे प्रेम का आवेश नहीं, केवल विचार है।

उत्तराकांक्षी—

विधुशेखर।

× × ×

रात्रि—११.३०

इन्दिरा रानी,

.....पढ़ कर भी सन्तोष न हुआ। तुम्हारे पत्र के अक्षरों में प्रेम था, व्यथा उस से भी अधिक थी। ऐसी क्या बात है? और जब तुमने मेरे द्वारा "अपने हृदय में प्रेम की अलौकिक निर्दोष ज्योति प्रज्ज्वलित होती देखी है" तो उस पावन बन्धन में बँधना क्यों अस्वीकार करती हो? केवल प्रेम होना भर, भले ही वह उज्ज्वल और पवित्र हो मानव को ठीक मार्ग पर रखने के लिये पर्याप्त नहीं। मैं प्रेम को आध्यात्मिक वस्तु समझता हूँ अवश्य, और वह जैसे भक्त का भगवान में हो सकता है, वैसे ही उतना ही उज्ज्वल और निष्कलुष दो आत्माओं में भी हो सकता है। पर केवल ऐसे प्रेम को ही प्रश्रय देना अनेकों झंझटों का कारण हो सकता है। उससे नागरिक जीवन में

भीषण कठिनाइयाँ तथा समस्याएं भी उपस्थित हो सकती हैं। मैंने पिछली बार लिखा था कि मैं नागरिकता को प्राधान्य देता हूँ। और नागरिक जीवन में अपने कर्तव्य और अधिकारों का प्रत्येक पहलू जितनी दूर तक हो सके सुरक्षित रहना चाहिये। बिना विवाह के हमारा तुम्हारा आध्यात्मिक पवित्र प्रेम भी अनैतिक समझा जायगा। और जहाँ अर्थ और सम्पत्ति में पारस्परिक अनागरिक बातें हो सकती है, वहाँ अन्य नागरिकों को तुम्हारे अविवाहित होने के भ्रम में बहुत कुछ मानसिक और शारीरिक क्लेश हो सकते है। फिर जब हम तुम दोनों एक दूसरे को चाहते हैं, तो फिर कोई बाधा क्यों रहे? मैं केवल आध्यात्मिक सम्बन्ध नहीं चाहता, पूर्ण सहयोग चाहता हूँ। हम दोनों मिलकर ही पुष्ट नागरिक और सच्चे नागरिक संसार में बना सकेंगे। क्योंकि हमारे प्रेम में केवल धार्मिक भावना अथवा सामाजिक-नीति नहीं वरन् नागरिक-कर्तव्य और अधिकार, और उसके योग्य बनने बनाने की समस्या है। जिससे तुम भी अपने पत्र में सहमति दिखा चुकी हो—

उत्तर की आशा कर रहा हूँ,

विधुशेखर।

× × ×

इन्दिरा रानी,

.....मुझे ऐसा लग रहा है कि तुम कुछ छिपा रही हो।

इतनी तीव्र विकलता होते हुए भी तुम्हें कोई संकोच घेरे हुए है। ऐसी क्या बात है ? तुम्हें मेरी शपथ है, वह स्पष्ट कर दो—

विधुशेखर।

× × ×

मेरी रानी,

तुम्हारा दुःख-दग्ध पत्र मिला। तुमने मुझे भी साधारण समाज की प्रवृति से जाँच कर भय किया और वास्तविक बात बताने में इतना संकोच किया। तुम्हारा ख़याल है मैं तुम्हें घृणा करने लगूँगा। तुम्हें नीच समझूँगा और तुम्हें जो मेरा प्रेम पाने का अब तक एक आन्तरिक सुख मिल रहा है उससे वञ्चित कर दूंगा। पर मेरा विश्वास करो, तुम्हारा पत्र पढ़ कर और तुम्हारी वास्तविक अवस्था जान कर तो मैं और भी अपने विचार में दृढ़ हो गया हूँ। एक तो इस लिये कि मैंने तुम में जिस प्रेम का दर्शन किया है वह पवित्र और पावन है। यहीं तो मैं प्रेम के आध्यात्मिक अस्तित्व पर विश्वास करता हूँ। तुममें अपने जीवन के प्रति जो पश्चात्ताप का भाव उदय हुआ है वह उसी प्रेम का शुद्ध करने वाला प्रायश्चित्त है। इसलिये मुझे तुम्हारे प्रेम में उन सब सती कुमारियों से अधिक विश्वास है जो बिना प्रेम का ठीक परिचय पाये किसी और चीज़ को ही प्रेम कह उसके पीछे दौड़ती हैं। फिर दूसरा एक कारण सामाजिक है। जिस समाज के रोग ने अथवा अत्याचार ने मुझे अपने माता-पिताओं से वञ्चित कर

अनाथ बनाया है, उनके रहते उनका अस्तित्व, नाम, कुल सभी को मेरे लिये मिटा दिया है। मैं समझता हूँ और तुम्हारे कथन से दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ, उसी अत्याचार ने तुम्हें वेश्या बनाया है और तुमसी अनेकों भारत की सुपुत्रियाँ समाज के अनाचार की शिकार होकर उसी समाज को जर्जरित करने में लगी हुई हैं। स्वयं भी अपावन पीड़ापूर्ण जीवन बिता रही हैं। जहाँ किसी से सुसम्बद्ध हो सम्मानित तथा प्रतिष्ठित बनकर वे नागरिक जीवन की शोभा और श्री बढ़ातीं वहाँ वे उस नागरिक जीवन को दूषित कर रही हैं। फिर इस बात का उत्तरदायित्व कि मैं अनाथ हूँ और तुम वेश्या, मेरे और तुम्हारे ऊपर नहीं, मैं चाहता हूँ कि तुम इस सामाजिक अनाचार में अधिक न पिसो। मैं तुम्हारी ही नहीं, तुम्हारी जाति भर की स्त्रियों की मुक्ति का उद्योग करूंगा। क्या तुम कुछ सहायता दोगी? ठहरो, जब तक वेश्याएँ भी सुनागरिकाएँ नहीं बनेंगी, मैं अपने विवाह को स्थगित रक्खूँगा। मैं आज से ही आन्दोलन आरम्भ करता हूँ। तुम्हारी सहायता का भरोसा है।

विधुशेखर।

× × ×

मेरी रानी,

मुझे तो आशा नहीं थी कि तुम इतना बड़ा काम इतनी शीघ्रता पूर्वक करा दोगी। मैं समझता था कि विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करने की आदत पड़ जाने के कारण शायद इस ज़िन्दगी

का मोह सभी इतनी आसानी से न छोड़ सकेंगी। सभी के हृदय में कोई तुम्हारी सी आग थोड़े ही लगी थी, है न! पर तुम्हारे भेजे सौ प्रतिज्ञा-पत्रों को देख कर तो मैं अवाक् रह गया। और उसी क्षण मैं ठीक-ठीक अनुभव कर सका कि विलास की कीचड़ में, दूसरों के काम-कन्दुक बने रहने के जीवन में कभी किसी क्षण भी कोई सुख का स्पर्श नहीं हो सकता। सभी पत्रों ने हमारे प्रश्न को गम्भीरतापूर्वक उठा लिया है। तुम देखती ही होगी आज कल का मुख्य विषय हमारा यही वेश्या-उद्धारक आन्दोलन है। मेरी लेखनी में इतना बल कहाँ से आगया है, सब तुम्हारी दिव्य शक्ति है।

अनेकों वेश्याओं ने भी बिना हम लोगों की प्रेरणा के अपना हाल प्रकाशित किया है और यह इच्छा प्रकट की है कि यदि उन के निर्वाह के लिये कुछ प्रबन्ध हो जाय तो वे इस जीवन को त्याग दें।

एक बात सुनकर तुम्हें प्रसन्नता होगी कि मैंने जो वेश्याओं की अवस्था और वेश्या बनने के कारणों की जाँच के लिये कमेटी बनाने का परामर्श भेजा था वह सरकार ने स्वीकार कर लिया है। कमेटी शीघ्र ही बन जायगी। हम लोग तब तक निजी रूप में वेश्या-उद्धारक कार्य को संचालित रक्खेंगे।

कुछ लोगों का कहना है कि वेश्याएँ समाज के लिये आवश्यक हैं। मनुष्य की जो प्रवृत्ति आज वेश्याओं की ओर आकृष्ट

होती है, वह वेश्याएं न रहने पर असन्तुष्ट हुई अच्छे भले नागरिकों के घरों में अशान्ति और गन्दगी फैलाने का कारण बन सकती है। पर इसके लिये दुकानें क्यों खोली जायँ? रूप की दुकानें खोलने से जहाँ स्त्री के स्त्रीत्व का घोर अपमान है तथा जहाँ उसे अपने पैसों के लिये हर प्रकार से बुरे भले ग्राहक को सन्तुष्ट करने का अत्याचार अपने ऊपर करना पड़ता है, वहाँ दूसरे अपरिचित और शुद्ध प्रकृति वालों को भी रूप की आग पतिंगा बना सकती है। इन कामोद्दीपन के अड्डों पर उस प्रवृत्ति को सन्तुष्ट नहीं किया जाता, वरन् भड़काया और बढ़ाया जाता है। जो स्त्रियाँ देवियाँ बनकर अपने सम्बन्धी पुरुषों में कर्तव्य-परायणता और नागरिक योग्यता की स्फूर्ति भरतीं; वे यहाँ अपने पैसों और विलास के लिये उन्हें पाप न कहो न सही, पर अनागरिक काम करने के लिये फुसलाती हैं, भड़काती हैं और विवश कर देती हैं। मानवीय कमजोरियों का व्यवसाय? ओह! घोर राक्षसी विचार है। खैर, तो जितनी भी प्रतिज्ञाएं भरवाई जा सकें भरवाओ। सम्भवतः, जिस प्रकार के वातावरण में ये लोग अभी तक पली हैं, उसके कारण उन्हें नवयुवक एकदम न अपना सक, इस लिये मैं पहले एक स्त्री-उद्योग-मण्डल स्थापित करूंगा। हमारे प्रान्त के कई राजाओं ने इस उद्योग-मण्डल के लिये बहुत सा दान देना निश्चय कर लिया है। है न आश्चर्य—राजा लोगों का दान! पर हमें तो अपना उद्देश्य सफल करना है। इस रुपये से मण्डल की स्थापना की जायगी। और वे सभी वेश्याएं जो अपने

लिये पति नहीं पा सकेंगी इस उद्योग-मण्डल में रहकर कुछ उद्योग करेंगी। कपड़े बुनना, सीना, काढ़ना, रँगरेज़ी, अचार मुरब्बों का काम, पंखे बनाना, टोकरियाँ बनाना, खिलौने आदि बनाना; इन कामों के साथ संगीत-शिक्षणालय भी खोल दिया जायगा। भारतीय नृत्य-कला का संस्कृत रूप इनको सिखाया जायगा। ये नृत्य और संगीत की शिक्षकाएँ सहज ही बनाई जा सकती हैं। इन्हें अंग्रेज़ी हिन्दी का टाइप करना सिखाया जायगा। इसकी माँग होगी और स्त्रियाँ इस काम को सहज ही कर सकेंगी। कुछ इनमें से अवश्य ही अच्छी धाय बन सकेंगी। बालकों की देख रेख और शिक्षा का काम भी स्त्रियाँ ही ठीक कर सकती हैं। रोगी-सेवा के योग्य भी इनको बनाया जायगा। इस प्रकार जितना अधिक से अधिक उपयोगी ये बन सकेंगी बनाया जायगा। जब जिसको योग्य पति मिल जाय वह शादी कर सकेगी।

बस, मैं वह दिन देख रहा हूँ जब हम और तुम·····।

विधुशेखर।

× × ×

रानी,

रिपोर्ट निकल गई है। उसमें कोई नई बात नहीं। हम सभी मान गये हैं कि एक भूल में फँस कर समाज के भय से अनेकों स्त्रियाँ बाज़ार में जा बैठी हैं। अनेकों अनाथ होकर दरदर पेट के

कारण ठोकर खाकर इस पेशे में आयी हैं। अनेकों को पुरानी वेश्याओं ने अपने बुढ़ापे का सहारा बनाने के लिये भगा मँगाया है। अनेकों इस लिये इस वृत्ति में आई हैं कि उनकी स्वतन्त्र प्रकृति के लिये समाज में आदर और स्थान नहीं मिला, उनको कोई नागरिक अधिकार नहीं दिया गया कि वे अपना महत्व पुरुषों की काम-कन्दुक होने और घर की नौकरानी होने से कुछ आगे और अधिक समझ सकतीं। पर्दे की कठोर सामाजिक लौह-शृङ्खला में बन्द उनको इन यौन बातों में कुत्सित आनन्द ही एक आनन्द रह जाता है, और इसका भी जब वे अवसर पाती हैं सब प्रकार उपयोग करना चाहती हैं। यदि उन्हें भी पुरुष के समान नागरिक अधिकार मिल जायँ तो वे अच्छे स्थान पावें, स्वावलम्बिनी बनें और अपनी प्रतिष्ठा समझें। गवर्नमेंट आफ़ इण्डिया एक्ट १९३५ से उनको जो नगण्य अधिकार मिले हैं वे तुच्छ हैं, और फिर हमारा समाज उतने अधिकारों का भी उपयोग उन्हें नहीं करने देता। अशिक्षित भोली रहने के कारण भी वे भुलावे में शीघ्र ही आजाती हैं और अपने मार्ग से च्युत होकर अनागरिक व्यवसायों में लग जाती हैं।

हाँ रिपोर्ट से सरकार का ध्यान हमारे आन्दोलन की ओर गया है। उसने हमें १००) मासिक सहायता देने का वचन दिया है।

तुम जिस लगन से मण्डल का भवन बनवाने में लगी हुई हो वह मेरे लिये ईर्ष्या की बात है। संभवतः दो हफ़्तों में वह तय्यार हो जायगा।

बोलो, विवाह के अवसर पर क्या क्या तैयारियाँ चाहती हो ? मैं चाहता हूँ जिस दिन मण्डल-भवन का प्रवेशोत्सव-संस्कार हो, वहीं, उसी रात्रि को हमारी चिर-अभिलाषा भी पूर्ण हो । मण्डल के प्रवेश की तिथि भी निश्चय करली गई है। वसन्त-पञ्चमी ! कहो पसन्द है न ?

विधुशेखर ।

× × ×

रानी, रानी,

यह तुम क्या कर रही हो ? क्या कल जो " सैनिक " में प्रकाशित हुआ है वह ठीक है ? क्या तुम मुझे बिलकुल भूल गयी थीं ? क्या तुमने मेरे जीवन को मिट्टी में मिलाना निश्चय कर लिया है ? ओफ़, कई दिन तक बिलकुल अलग अलग बिना बोले चाले रह कर क्या यही सोच रही थीं ? क्या मुझसे कोई अपराध हो गया जो इस प्रकार सार्वजनिक भाषण बिना मुझे सूचना दिये और परामर्श किये दे डाला—ओफ़ ! इसे पढ़कर मेरे पैरों तले की मिट्टी निकल गई है, मेरा स्वर्ण-स्वप्न बिखर गया है, बताओ क्या यह सच है ? मैं अख़बार की कटिंग दे रहा हूँ । एक बार फिर विचार करो रानी ! और मेरी नाव को डूबने से बचाओ ।

विधुशेखर ।

× × ×

कटिंग

एक महिमामयी वेश्या का अपूर्व निश्चय

इन्दिरा रानी का ओजपूर्ण भाषण

कल सायंकाल को ऐसप्लेनेड रोड के पार्क में वेश्याओं और स्त्रियों की पहली सभा हुई। आज से तीन दिन बाद वसन्त पञ्चमी है, और उस दिन स्त्री-उद्योग-मण्डल के भवन का उद्घाटन संस्कार होगा। इस संस्कार से पूर्व, कुछ पूर्व ही श्री० इन्दिरा रानी का भाषण एक प्रोत्साहन का संदेश था। उन्होंने देदीप्यमान मुख मण्डल का प्रभाव डालते हुए कहा— बहिनो और भाइयो! आज हमारा, जिनको वेश्या कहा जाता है उन्हीं का नया, जीवन नहीं हो रहा, सारी भारतीय स्त्री जाति को नया प्राण मिलने वाला है और उसका प्रभाव भारत के सारे नागरिक जीवन पर पड़ना अवश्यम्भावी है। आज जिस यज्ञ की प्रथम आहुति एक स्त्री-उद्योग-मण्डल की स्थापना से हुई है उसकी सफलता से देश भर में ऐसे उपयोगी मण्डल बनेंगे। ये मण्डल जहाँ पतितों को पतित होने से रोकेंगे उन्हें स्वावलम्ब का दिव्य आनन्द चखायेंगे, वहाँ स्त्रियों के नागरिक अधिकारों के लिये, बालकों को हृष्ट-पुष्ट बनाने के लिए, औद्योगिक उन्नति का आदर्श उपस्थित करने के लिये और सब से अधिक उच्छृङ्खल नागरिकों के अनुचित व्यवहारों को रोकने के लिए एक बड़ी शक्तिशाली सेना प्रदान करेंगे। आप में से जो बहिनें भी चाहेंगीं अपने योग्य पति पाकर सुखी

जीवन व्यतीत करेंगी, तब तक यह मण्डल आपको आश्रय देगा। पर, मैंने तो कुछ और ही निश्चय किया है। जहाँ से मुझे इस पवित्र मार्ग का दर्शन हुआ, जहाँ से मैंने प्रेम का सच्चा पवित्र स्रोत पाया, वहाँ उसको उससे भी अधिक उज्ज्वल बनाने के लिये मैंने निश्चय किया है कि मैं आजीवन इस मण्डल की सेवा करूंगी। मेरा जीवन बस इसी के लिए है। इतनी भरी जनता के समक्ष मेरा अब दृढ़ निश्चय है कि मैं पवित्र जीवन व्यतीत करती हुई नागरिक उन्नति में भाग लूँगी और विवाह न करूंगी। आशा है आप लोग मुझे आशीर्वाद देंगी कि मैं अपने इस निश्चय का दृढ़ता के साथ पालन कर सकूँ

विधुशेखर।

× × ×

प्रिय मित्र श्याम,

तुमने मेरे दुःख में सहानुभूति दिखाई है, धन्यवाद! तुमने यह भी चाहा है कि मैं उस देवी का परिचय तुम्हें दूं जिसने मुझे वेश्या उद्धार के लिये प्रोत्साहित किया। वह और कोई नहीं स्त्री-उद्योग-मण्डल की व्यवस्थापिका इन्दिरा रानी हैं। उनका पत्र मैं तुम्हें देखने के लिये भेज रहा हूँ। उसी से तुम शक्ति का अनुमान कर सकोगे। ओह, मेरी हृदय-देवी मेरे हृदय में न बैठ कर मेरे उद्योग-मन्दिर में जा बैठी। पत्र साथ ही लगा है। मेरे लिये संसार में क्या रह गया? बताओ। बस शुद्ध कर्त्तव्य भार। वह तो

ढोना ही पड़ेगा। केवल उसमें एक बात अवश्य रस की होगी कि इन्दिरा रानी की प्रसन्नता उसी में होगी।

तुम्हारा

विधुशेखर।

पत्र

प्रियतम,

आप मेरे सत्य ही प्रियतम हैं। उस दिन रेल में मिलने से आज तक मैं सदा आपको अपने पास पाती रही हूँ। उस प्रेम की पवित्र धारा में डूब डूब कर मैंने अनुभव किया है कि मैं पवित्र होती चली गई हूँ। मेरा हृदय का कलुष शुद्ध होता गया है। उस दिन उस भवन के अन्तिम निर्माण को मैं बड़ी उत्सुकता से देख रही थी, क्योंकि मैं भी वसन्त पञ्चमी को अपने जीवन को नये सूत्र में आवद्ध करने और नये जीवन के उद्धार के लिये विकल थी, और जिस क्षण उसकी सम्पूर्ण समाप्ति हुई उसी क्षण जैसे मैं एक और प्रकाश-लोक में पहुँच गई। मुझे लगा कि जिस पवित्र-अग्नि और तपस्या का फल यह भवन दीख रहा है उसकी रक्षा तो सब कुछ देकर भी करनी होगी। और यदि हम दोनों विवाह सूत्र में आवद्ध हो जायँगे तो हमारा सारा उद्योग बाहर से एक स्वार्थ की छाया से मलिन हो जायगा और फिर क्या इस भवन की पवित्रता में किसी को विश्वास हो सकेगा? आपका प्रेम मुझे प्रज्वलित शिखा रहे। वह मलिन न हो सके इस लिये मैंने निश्चय

किया कि मैं विवाह न करूंगी। प्रिय, यह अन्तर प्रेरणा का फल है। इसे तुम भी स्वीकार करो। मैं अपना जीवन स्त्रियों की नागरिक-शिक्षा के लिये समर्पण कर रही हूँ। मुझे लगता है जैसे आपके प्रेम का सार मेरे हृदय में समा गया है, और आप और भी घनिष्ठ रूप से मेरे रोम रोम में समा गये हैं। आपके प्रेम की मैं पूजा कर सकूँ।

इन्दिरा।*

---

* ये सभी पत्र हमें विधुशेखर जी के घनिष्ठ मित्र श्री० श्याम मनोहर जी एम० बी०, बी० एस० से मिले। हम नहीं कह सकते उन्होंने इन्दिरा रानी से ये पत्र कैसे प्राप्त किए? हमारे मतलब के थे हमने प्रकाशित कर दिए हैं।

११

स्वतन्त्रता का अर्थ

[एक मैदान। जहां तहां तिरंगे झंडे लगे दीख रहे हैं। बड़े उत्साह से भरा हुआ एक विद्यार्थियों का दल आता है। उसके हाथों में तिरंगे झण्डे हैं। मुख उत्साह से लाल हो रहे हैं। कुछ नंगे सिर हैं। कुछ पर गांधी टोपियां हैं, मिले जुले कपड़े पहने हैं। वह दल गाता हुआ निकला जाता है। वह गाता जाता है—

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा॥
इस झण्डे के नीचे निर्भय,
लें स्वराज्य यह अविचल निश्चय,

बोलें भारत माता की जय,
तब होवे प्रण पूर्ण हमारा ।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा ॥

दल चला जाता है। गाने की ध्वनि मन्द से मन्दतर होती चली जाती है। अभी बिलकुल विलीन नहीं हो पाई।

भारत कुमार का थोड़ी मुग्धावस्था में प्रवेश]

भारत—कैसे भावों से हृदय आलोड़ित हो रहा है। स्वतन्त्रता का मन्त्र जादू से भरा हुआ है।

और वह दल जो अभी झण्डों को ऊँचा किये हुए दर्प का भरा हुआ गाना गाता चला जा रहा है, उसमें कितनी स्वतन्त्रता की कामना है! उसके हृदय में कितनी आशा है! निश्चय ही अब स्वतन्त्रता दूर नहीं।.....यह कौन? अहा गुरुवर!

[एक वृद्ध पुरुष का दूसरी ओर से प्रवेश]

वृद्ध—सन्ध्या है, यह तो सन्ध्या है। अन्धकार और प्रकाश का मेल है यहाँ। प्रातःकालीन सन्ध्या में सूर्य के प्रकाश की अस्फुट किरणों के स्पर्श से गर्तों में भरा अन्धकार कैसे घना हो जाता है? भगवन् हमारे देश का कल्याण हो।

भारत—गुरुवर आज का दिन कैसा दिव्य है। स्वतन्त्रता की सुनहरी उषा की झाँकी कितनी मादक है! गुरुदेव! गुरुदेव! आप मौन क्यों हैं?

वृद्ध—भारत ! यह सन्ध्या है। संघर्ष मात्र सन्ध्या है, और सन्ध्या को देखकर कौन कह सकता है कि अब दिन निकलेगा या रात्रि होगी ? सन्ध्या के बाद रात्रि भी हो सकती है। स्वतन्त्रता की सुनहरी उषा क्या तुम्हें इस भीड़ में दिखाई पड़ गई, या उनके गाने में या उनके जोर के नारों में ! देखो, फिर देखो, यह (नेपथ्य में झण्डा गायन की ध्वनि कुछ प्रबलतर हो रही है) एक और स्वतन्त्रता का पागल दल चला आ रहा है। ज़रा उसे गौर से देखो। एक ओर हो जाओ।

[दोनों स्टेज से हट जाते हैं। एक मनुष्यों का समूह एक-एक करके निकलता है। कुछ खद्दर पहने हैं, कुछ गांधी टोपी लगाये हैं, कुछ नंगे पांव, कुछ चप्पलें पहने, कुछ जूते पहने, कुछ देशी पहने, कुछ खद्दर धारे। वही गाना गाया जा रहा है।

" झण्डा ऊँचा रहे हमारा "

जय बोल रहे हैं ' भारतमाता की जय '। लटे, दुबले, मोटे, पतले सभी प्रकार के आदमी हैं। कुछ सिगरेट सुलगा रहे हैं, कुछ बीड़ी, कुछ गाते जा रहे हैं, कुछ हँसते। कुछ बातें करते जा रहे हैं। वृद्ध दो चार हैं। सबसे अधिक संख्या विद्यार्थियों की है। साथ-साथ मूंगफली बेचने वाले, रेवड़ी वाले और चाट वाले भी चल रहे हैं। और कोई-कोई इनसे खरीद भी रहे हैं। दल से एक गज दो गज के फासले पर कुछ साहबी ठाठ वाले लोग जा रहे हैं। मानो वे दर्शक हैं और उन्हें उस दल से कोई काम नहीं।]

वृद्ध—[स्टेज पर आकर] आओ भारत! देखा तुमने ? इस दल में क्या ऐसी बात देखी जिससे इनमें कोई गहरी बात दिखाई पड़े ? तुमने इन लोगों की पोशाकें देखीं ?

भारत—जी ! सब पोशाकें भिन्न-भिन्न प्रकार की थीं।

वृद्ध—तुमने उनके कपड़ों की जाति पहचानी ?

भारत—अधिकांश मिलके, विदेशी भी, खद्दर बहुत कम।

वृद्ध—और उनके चेहरे का उत्साह ?

भारत—कुछ तो बहुत गला फाड़ रहे थे, कुछ मुँह लटकाये थे, कुछ धीरे धीरे बोलते थे। कुछ को जैसे लज्जा लग रही हो।

वृद्ध—मूँगफली, पान-बीड़ी ?

भारत—उनसे तो एक मेला लगता था। बस!

वृद्ध—और पीछे जाने वाला जो साहबी दल था वह ?

भारत—वह तो ऐसा लगता था जैसे उसे भारत और उसकी स्वतन्त्रता से कोई मतलब ही नहीं। वे जैसे विरक्त महात्मा हों, भारत स्वतन्त्र हो जाय अच्छा, न हो जाय तो न सही।

वृद्ध—वृद्ध कितने देखे ?

भारत—उन्हें तो ऐसी बातें बच्चों का खेल लगती हैं।

वृद्ध—फिर किस बात में तुमने एकता देखी और इस प्रकार

के लोगों से तुम समझते हो स्वतन्त्रता मिलेगी तो क़ायम रहेगी। देखो, कुछ और दृश्य देखो—हट जाओ एक तरफ़।

[दोनों स्टेज से हट जाते हैं। परदा फटता है। क़िला दिखाई पड़ता है। उस पर लीडन का कार्ड लगा हुआ है। लीडन हालैण्ड का एक नगर है। स्पेन के शासक की ओर से नियुक्त गवर्नर हालैण्ड निवासियों की स्वतन्त्रता का अपहरण करने के लिये लीडन को घेरे पड़ा है, स्पेन का भेजा हुआ गवर्नर दीख रहा है]

ऐल्वा—हः हः हः, इन डचों की हेकड़ी तो देखो, परेशान कर रखा है। पर इससे स्पेन के दृढ़ निश्चय पर कोई असर नहीं पड़ सकता, वह इन उद्दण्डों को पीस डालेगा, इन पर से अपना अधिकार नहीं हटने देगा, इस लीडन के फ़तह हो जाने पर सब फ़तह है। चारों ओर से घिरा हुआ है, रसद का कहीं से भी इन्तज़ाम नहीं, मरेंगे और झुकेंगे। यह कड़ाई कुछ ही दिनों की और है, आख़िर लीडन पर ऐल्वा का अधिकार होगा।

[चला जाता है।

दृश्य बदलता है

एक उच्च परिवार। रसोई घर। स्त्री कुछ भोजन व्यवस्था में लगी सी, चिन्तातुर। दो बच्चे मांगते आते हैं।]

एक बच्चा—कुछ खाने को दे माँ!

माँ—खाने को स्पेन वालों का कलेजा मिले। उन्होंने समझ रक्खा है डच कमज़ोर हैं भूख से पीड़ित अपने बच्चों को न देख

सकेंगे। अहः [कब्बर्ड में से सूखा-सा केक का टुकड़ा निकालती है] घर भर में यही अखीरी लुकमा है। आखिर इससे चार आदमियों का क्या होगा ?

[पिता का प्रवेश, प्यासा-भूखा, लड़खड़ाता, थका, हांपता हुआ चुप आकर खड़ा हो जाता है]

दूसरा बच्चा—ओ माँ ! रहने दो, तुम खा लो माँ, तुमने और पापा ने तो तीन दिन से कुछ नहीं खाया, माँ !

माँ—(आँखों में आँसू डबडबा आते हैं) न, न, लो, (अपने पति को खड़ा देखकर) अरे, तुम आगये ? क्या कुछ हो रहा है ?

पिता—हो रहा है, होगा क्या ? शहर भर में खाने की चीज़ का एक दाना नहीं, कोने-कोने में भूख की भयङ्कर पीड़ा का नर्तन है, कै·····से होगा ? कुछ तो खाने को चाहिये ? इस पेट की आग कैसे बुझे ? घर में भी कुछ नहीं क्या ?

माँ—कुछ नहीं, यह एक सूखा सड़ा टुकड़ा है, बच्चों को देने जारही थी।

बच्चे—[पिता के पास आ जाते हैं] पिता जी क्या होगा ?

पिता—पुण्य होगा बेटा, जालिमों के जुल्म से मर रहे हैं। देश स्वतन्त्र रहे, हमें तो मरना ही है। हम लोग स्वतन्त्रता का मूल्य जानते हैं। उसके लिये सारी यातनायें सहेंगे, और उन्हें सहने के लिये ज़िन्दा भी रहेंगे। जिस चीज़ से भी ज़िन्दा रह

सकेंगे रहेंगे·····घबराओ मत बच्चो। अभी तो ये पेड़ खड़े हैं। अन्न नहीं है पत्तियां ही सही, गाय भैंस इन्हें खाते हैं न ?

बच्चे—पत्तियाँ ?

माँ—पत्तियाँ ?

पिता—हाँ पत्तियाँ !

माँ—बहुत ठीक बात रही। दो दिन पहिले ध्यान आ जाता तो क्यों इतना सूखते। स्पेन ! हम पत्ते खाकर रहेंगे। मरेंगे नहीं और तुझे लीडन पर अधिकार नहीं करने देंगे।

बच्चे—नहीं करने देंगे, नहीं करने देंगे।

[पिता पत्ते तोड़ लाता है, उसी को टेबिल पर रख कर भोजन-व्यवस्था होती है।]

बच्चे—नमक से पत्ते अच्छे लगेंगे, नमक है क्या, माँ ?

माँ—नमक भी कहाँ रहा है, बेटा !

पिता—यों ही सही, जिस भूमि ने सुख दिया है उसकी रक्षा दुःख झेलकर करनी होगी। अहा ! कैसा स्वाद है इनमें !

[एक अन्य नागरिक का प्रवेश, भूखा लड़खड़ाता है]

ना०—क्या तुम्हारे पास कुछ खाने को है, मैं भूखा मर रहा हूँ।

पिता—हाँ है। मरो मत, हमें आदमियों की ज़रूरत है। वह देखो पेड़ खड़ा है। उसके यहां का स्वादिष्ट भोजन करो।

ना०—स्वादिष्ट ! ठीक दुःख में जो स्वादिष्ट है, वही तो सच-मुच स्वादिष्ट है।

[वह भी पत्ते तोड़ कर खाता है। एक दल का दल आता है और पत्ते तोड़कर खाने लगता है।]

पिता—लो, पेड़ भी समाप्त हुआ।

[पर्दा बदलता है। किला, वही पहला भाग। ऐल्वा फिर वहीं दिखाई पड़ता है।]

ऐल्वा—[एक ओर देख रहा है, कुछ देर बाद]····· हद हो रही है। पर इनकी हठ के साथ मेरा क्रोध बढ़ रहा है।

[एक नायक का प्रवेश]

ऐल्वा—क्या बात हुई है ? इतने दिन ये लोग कैसे टिक सके ?

ना०—महोदय, अब उन्होंने पत्ते खाना शुरू कर दिया है।

ऐल्वा—पत्ते खाना शुरू कर दिया है ! ग़ज़ब इन भूखों की उद्दण्डता तो ग़ज़ब की है !

[क़िले पर कुछ डच दिखाई देते हैं]

ऐल्वा—वे लोग क्या कुछ कहना चाहते हैं ? शायद अब सन्धि चाहते होंगे। मैं तो समझता था नायक·····

डच०—[क़िले से] ऐ, ऐ, राक्षस-अभिमानी ! तू अपनी ताक़त खूब अजमा ले। हम आज भूखों मर रहे हैं। पर याद रख

हम चूहे, कुत्ते और चाहे जो कुछ खाकर ज़िन्दा रहेंगे लेकिन हार न मानेंगे।

ऐल्वा—इस हठ में लाभ नहीं।

एक डच—लाभ का प्रलोभन देने वाले शत्रु! हम स्वतन्त्रता का मूल्य समझते हैं। अपने हक़ और इज्ज़त को जानते हैं। हम अपनी स्वतन्त्रता के लिए जैसे भी होगा ज़िन्दा रहेंगे। और जब हमारे सिवा कुछ बाक़ी न रहेगा तो·····

ऐल्वा—तो तो हार मानोगे ही।

दूसरा०—चुप रहो और यक़ीन रक्खो कि तब हममें से हर एक अपने बायें हाथ को खा डालेगा। उसे खाकर जीवित रहेगा।

तीसरा०—और दाहिने हाथ को विदेशी ज़ालिमों से अपनी औरतों, अपनी आज़ादी और अपने घर की रक्षा करने के लिये बचा रखेगा।

ऐल्वा—हः हः हः। ऐसा! और जब दाहिना हाथ भी नष्ट हो जायगा तब?

चौथा०—तब अपने घरों में आग लगा कर नगर को भस्म कर देंगे, किन्तु पराधीनता न स्वीकार करेंगे। हार न मानेंगे। और तुम्हारे द्वारा अपने घरों को नष्ट न होने देंगे।

सब०—सचमुच न होने देंगे। हम जीवित रहेंगे मरने के

लिये और जीतने के लिये···ओ···आकाश के देवता तू जितनी चाहे परीक्षा करले। डचों के बच्चे-बच्चे को तू सच्चा और कर्त्तव्यशील पायेगा।

[चले जाते हैं। सन्नाटा छा जाता है। कुछ देर बाद।]

ऐल्वा—इन मुट्ठी-भर लोगों का निश्चय कितना भीषण है। कुत्ते बिल्लियों की तरह मरेंगे। देखूँगा यह ऐंठ कब तक है।

[दृश्य बदलता है। लीडन के कुछ अधिकारी]

एक—अब क्या देश को इन नृशंसों के हाथ सौंप देना होगा?

दूसरा—जिस स्वतन्त्रता की पूजा में हमने इतनी बलियाँ दी हैं, क्या उसे यों खो जाने देंगे?

तीसरा—जो डच समुद्र जैसे भयानक शत्रु से हार नहीं मानता, वह स्पेन से हार मान कर अपने इतिहास को गन्दा नहीं करेगा।

एक—तो फिर आओ अन्तिम आत्मसमर्पण करें। नगर में आग लगाकर सब रण में कूद पड़ें।

पहला—पर ठहरो। अभी एक और उपाय है। जब मरना निश्चय है तो यह देख कर मरें कि हमारी भूमि किसी दूसरे की होकर नहीं रहती, या तो वह डच की है और नहीं तो किसी की नहीं।

एक—ऐसा क्या उपाय है?

पह०—है। हमारे मित्र डायक हैं! उन्हें बना कर समुद्र पर विजय पाई है। उन्हें तोड़ कर हम शत्रुओं पर विजय पायेंगे।

दूसरा—ठीक है; अः दुर्दान्त मनुष्य कितना भयङ्कर हो सकता है, यह रक्तकर्मा स्पेन के शासकों से पूछो!

सब—तो यह ठीक रहा, चलो, सब चलो—

चलो-चलो सब वीर धीर, यह अन्तिम आहुति का क्षण है।
नश्वर जग में नश्वर जीवन, नश्वर तन, नश्वर धन है॥

[दृश्य बदलता है। क़िले का वही दृश्य। ऐल्वा और उसका साथी नायक]

ऐल्वा—अभी इन लोगों को होश आया कि नहीं, अब तो मरने से भी बदतर हो गये हैं।

नायक—आज तो एक दम शान्ति-सी दिखाई देती है, जैसे सब मर गये हों। न कोई आज चुनौती देता दिखाई देता है, न फटकार बताता है। चटाक-पटाक भी नहीं है।

ऐल्वा—कहीं भूख से सबके सब·····

[एक दम नेपथ्य से ध्वनि सुनाई देती है: 'ऐ स्वतन्त्रता की अनुपम सुन्दरी देवी! हम डच लोगों के प्राण-पुष्प तुझे भेंट हैं। उन्हें पाकर तू तृप्त हो और बलवती होकर युग-युगान्तर तक तू मनुष्यों को राक्षस होने से बचा'—

एकदम 'भलभल' का शब्द सुनाई देता है। जैसे बांध टूट गया हो]

नायक—यह क्या बात है ? यह शब्द कैसा ?

ऐल्वा—हवा में कुछ नमी कैसे ? और हवा के साथ सड़ायँध सी भी आ रही है। मानो बरसों से सड़ता घास-पात किसी ने कुरेदा हो।

[एक दूत का बदहवास प्रवेश]

दूत—ग़ज़ब होगया !

ऐल्वा—क्या होगया ?

दूत—डच लोगों ने एक बड़े भारी शत्रु को देश में घुसा लिया है। अब हमारा कल्याण नहीं।

[भलभल की आवाज़ बढ़ती जाती है]

ऐल्वा—वह कौन है ?

दूत—वह समुद्र है। डायकें तोड़ दी गईं। पानी इधर चला आरहा है। यदि एकदम सेना नहीं हटाई गई तो सब नष्ट हो जायँगे।

ऐल्वा—ओफ़-ओफ़, यह क्या हुआ ? सब मिट्टी में मिलगया।

नायक—सबको भागने की आज्ञा.....

[लोग भागते आते हैं]

लोग १—अरे चलो

२--अरे भागो।

३--बचना मुश्किल है।

४--अरे ठहरो मत जी ।

५--उस समुद्र से कौन लोहा लेगा ?

[सब भाग जाते हैं ।]

[किले पर चार पांच नागरिक दिखाई देते हैं । उदय होते हुए सूर्य का लाल प्रकाश उनके सूखे उद्दीप्त मुख पर पड़ रहा है, ऐल्वा पर छाया पड़ रही है ।]

[ये नागरिक गाना गाते हैं]

तू प्रलय का गीत गा ले ।
खेल झंझा से, चुहल कर, विज्जु-ज्वाला से मचल कर ।
अमर साहस कर अरे तू ! मृत्यु का वरदान पाले ॥

[गाना होता रहता है । परदा गिरता है । कुछ काल सन्नाटा]

[वृद्ध का स्टेज पर प्रवेश]

वृद्ध--भारत, यहाँ आओ ।

भारत--गुरुदेव, कैसा उग्र था, यह सब और वह गाना ।

तू प्रलय का गीत गा ले ।
अमर साहस कर अरे तू ! मृत्यु का वरदान पाले ।

वृद्ध--न, भारत, उनकी उग्रता न देख कर हृदय के स

आग्रह और बलिदान के मूक और दृढ़ स्वागत को देख। बच्चे-बूढ़े अमीर-ग़रीब सभी मर जा सकते थे। पर सभी भूख की असह्य पीड़ा सहते हुए भी जीवित रहे, देश को गुलामी से बचाने के लिये।

भारत—सचमुच अभूतपूर्व त्याग था गुरुवर! स्तम्भित और जड़ कर देने वाला! भारत में भी·····

वृद्ध—हाँ, भारत में भी देखो। यहाँ भी आज स्वतन्त्रता का युद्ध चल रहा है! यहाँ के नागरिक और नवयुवक देखो क्या कर रहे हैं? हट जाओ।

[दोनों स्टेज से हट जाते हैं। पर्दा फटता है।]

[एक छत पर खुला बरामदा, उसमें एक युवक सो रहा है। नीचे सड़क है।]

[नैपथ्य में से आवाज़ आती है।]

" वीरेश, ओ वीरेश "

[खाट पर वीरेश कुछ कुलबुलाता है, फिर शान्त हो जाता है। फिर थोड़ी देर बाद]

" ओ वीरेश, वीरेश, बेटा! आठ बज गये, उठो! "

[युवक खाट में से ही उत्तर देता है।]

" क्या होगा कुछ काम है क्या? "

[नैपथ्य से] अरे पढ़ना-लिखना नहीं क्या ? फेल होना है ? उठ !

युवक--(आधा उठता हुआ) अजी क्या पढ़ना-लिखना ? रात को सिनेमा जो देखा था, सो नींद ही नहीं खुलती। आप फ़िकर न करें, मैं फेल नहीं हूँगा।

[थोड़ी देर बाद खाट पर बैठ कर]

हः हः हः पास क्या कोई मेहनत से होते हैं ? क्यों, वीरेश है न, वीरेश ने जो इतने हुनर सीखे हैं तो क्या यों ही। अरे वीरेश तू तो जानता है ? मास्टरों की खुशामद करना, (सिगरेट का बक्स उठा कर सिगरेट मुँह में देता है) अहहह ! और न बने तो उन्हें आँखें भी दिखा देना, (दियासलाई जलाने का उपक्रम करता है) और वह जो मास्टर साहब हैं उन्होंने कह ही दिया है कि हम हिंट बता देंगे। फिर फेल कैसे हूँगा। हहह, पिताजी क्या समझें कि उनका यह पुत्र वीरेश (सिगरेट का धुँआ उड़ाता हुआ) कितना होशियार, कितना क़ाबिल, कितना चतुर है। अरे, अभी कोई चाय नहीं लाया (सिगरेट का धुँआ फेंकते हुए घण्टी बजाता है)

[नैपथ्य से—' जी ']

वीरेश–चाय लाओ,जी का बच्चा, सो रहा है अभी–हहह हह।

(सिगरेट की धूल झाड़ता हुआ) में क्या कोई राम की तरह

अहमक हूँ। पढ़ना-पढ़ाना या फिर इधर-उधर देश-सेवा (मुँह बना कर) देश-सेवा-हहह।

[सड़क पर राम का प्रवेश]

(खद्दर के कपड़े हैं, आवाज़ देता है) "वीरेश ! वीरेश ! "

वीरेश–चले आओ भाई, राम ! इतने ज़ोर से चिल्लाने की ज़रूरत नहीं। जाग पड़ा हूँ, आज तो ! बैरा दो कप–(राम ऊपर पहुँचता है।)

वीरेश–हल्लो राम ! अच्छे हो, कहाँ से आ रहे हो ?

राम–मैं ! आज स्वतन्त्रता दिवस था।

वीरेश–हाँ, मैं भी वही मना रहा था भाई ! खूब स्वतन्त्र होकर सोया हूँ। और मेरा तो ऐसा स्वतन्त्रता दिवस रोज़ ही मनता है। अच्छा तो आप प्रभातफेरी करके, झण्डा फहरा के, झण्डे का गान गाके, सारे शहर को जगा कर, और मुझे जगाने आये हैं। सोचा होगा कि सो रहा होगा, क्यों ?

राम–मैंने तो यह सोचा था कि तुम आज ज़रूर प्रभात-फेरी में आओगे। रात को वादा जो किया था।

वीरेश—न भाई ! वादा मुझसे कभी पूरा हुआ है कि आज ही होगा। रात को सिनेमा सैकिंड शो में गया। देर में आया तो सुबह आँखें खुलती हैं ? देखो भाई साफ़-साफ़ बात है। मुझे तुम्हारे

काम से बहुत हमदर्दी है। देश स्वतन्त्र हो जाय इसे कौन नहीं मानेगा ? जिसने शैक्सपियर पढ़ा है, मिल्टन पढ़ा है, कार्यालय पढ़ा है, कौलैरा पढ़ा है।

राम—कौलैरा कौन·····हैज़ा।

वीरेश—धत्, नहीं यार ! वह जिसका ज़िक्र किया करते हैं मास्टर साहब दर्जे में; जिसने किसी बुड्ढे मेरीनर--

राम—अरे आपका मतलब कालरिज से है।

वीरेश—हाँ, तो, हः हः तुम यही कहो ! जिसने इतना सब पढ़ा है वह क्यों न स्वतन्त्रता के लिये हमदर्दी रक्खेगा, पर भाई ! देखो खद्दर मोटा होता है, पहन नहीं सकता। चाय बीड़ी की लत पड़ी हुई है, छोड़ नहीं सकता। सुबह की मीठी और मधुर नींद छोड़ नहीं सकता। सिनेमा देखने को तो मन चलता ही है। वह नहीं छोड़ सकता। गरज़ कि जैसा मैं हूँ अगर वैसा ही कुछ स्वतन्त्रता के काम आ सकूँ तो अच्छा है, समझे !

राम—हमारे देश का दुर्भाग्य ! भाई तुम सँभलो !

वीरेश—मेरे न सँभलने से कोई क्या बड़ा नुक़सान है ? तुम सँभले ही हुए हो, या नहीं, बस !

राम—देखो व्यंग की आदत छोड़ो, तुम अपना·····

वीरेश—मेरे अकेले से क्या ?

राम–तुम अकेले नहीं हो, देखो नीचे सड़क पर देखो। यह जो आदमी आ रहा है, यह भी तुम हो और उसके साथ जो आ रहा है वह भी तुम हो।

[सड़क पर दो सूटेड-बूटेड व्यक्तियों का प्रवेश]

एक–यार, मेरे तो पन्द्रह-सोलह रुपये महीने में सिगरेटों में ही व्यय हो जाते हैं। क्या पूछते हो, देखो यह बिल, (जेब से काग़ज़ निकाल कर दिखलाता है) फिर ब्यूटी की फिराक रहती है।

दूसरा–यार ब्यूटी तो है ही, देखिये इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के वाइस चाँसलर ने कनवोकेशन ऐड्रेस में कैसा बताया कि भारत वालों को ब्यूटी लवर होना चाहिये।

[दोनों चले जाते हैं]

राम–देखा वीरेश, डाक्टर "भा" के भाषण का इन दो मनचले युवकों ने जो अर्थ लगाया है, वैसा तुम भी न लगा सके होगे। है न, और देखो यह जोड़ा भी तुम्हीं हो।

[दो व्यक्तियों का प्रवेश]

एक–जनाब जब गाँव में जाता हूँ व्याख्यान देने, तब तो खद्दर ही पहन के जाता हूँ, यों घर पर कौन देखता है ?

दूसरा–भाई, देखो हम तो एक बार भड़प्पे में कांग्रेस की ओर से जेल हो आये हैं, बस अब कांग्रेस सरकार है। मज़े में ग्राम-

सेवक हैं। गाँव में रहते हैं झूँठी-सच्ची डायरी भरी रुपये वसूल किये। बिल्कुल पेंशन मिल रही है। किसी के आने की बात हुई तो ज़रा इधर-उधर भाग-दौड़ करली, बस।

[दोनों चले जाते हैं]

राम–देखो वीरेश, वह दो और आ रहे हैं।

[दो व्यक्तिकों का प्रवेश, गाते हुए]

हम तुम पर दीवाने थे, तुम हम पर दीवाने हो।

एक–यार क्या आशिकाना तबियत पाई है। ज़रा आज शाम को फिर चलना।

दूसरा–शाम को ?

एक–और क्या।

दूसरा–शाम को तो जुलूस निकलेगा। आज़ादी-दिवस है।

एक–तो क्या हुआ ? उसके बाद चले चलेंगे भाई, उसके लहज़े-लहज़े में नज़ाकत है। बोलती है मानो मिश्री घोलती है।

[चले जाते हैं]

राम—और देखो वीरेश यह दो और आये।

[दो व्यक्ति हाकीस्टिक लिये खिलखिलाते आते हैं]

एक—सिर फोड़ देता, या टाँग तोड़ देता, पर वह सामने ही नहीं आया !

दूसरा—पर यार, कुछ कालेज का काम भी किया है ?

एक—खेलने से फुरसत हो तब न ! तुम देख रहे हो, आज तीन मैच खेले !

दूसरा—और तुमने लिट्रेसी डे को प्लैज भरा था ?

एक—मैं क्या अहमक हूँ, भाई कौन भरे ? सब झूठ-मूठ की कारिस्तानी है। छोड़ो, शाम को मैच देखने आओगे ?

दूसरा—ज़रूर।

[चले जाते हैं]

राम—देखा तुमने, तुम अकेले नहीं। तुम ठीक हो जाओ तो यह सब ठीक हो जायें। तुम समझो मेरे भाई कि देश को स्वतंत्र करने के लिये अधिक से अधिक कार्य करने की ज़रूरत है।
[बैरा चाय लाता है]

वीरेश—[चाय का प्याला उठाते हुए] मुझ से तो न होगा। देश स्वतन्त्र हो या न हो।

[परदा गिर पड़ता है]

वृद्ध-भारत !

भारत-[पास आता है और रोता है]

वृद्ध–भारत, रोने से काम नहीं चलेगा !

भारत–मेरे हृदय में कितनी वेदना हो उठी है, गुरुदेव ! जिस देश में स्वतन्त्रता का संघर्ष छिड़ा हो, वहाँ के युवक केवल जलूसों में भाग लें, व्याख्यान सुनें, और हल्ला मचावें, मिल-जुलकर नटखटपन करें, और फिर दूसरे क्षण ही भारत को भूल जायें, मा ! तुम्हारे पैंतीस करोड़ पुत्र–

वृद्ध–इन्हें चेताओ भारत ! जीवन में ईमानदारी की सब से बड़ी ज़रूरत है। जीवन में एक स्वतन्त्र होने वाले नागरिक में एक आग और शक्ति की ज़रूरत है। स्वतन्त्र होने वाले देश के युवकों में अव्वल दर्जे की मुस्तैदी होनी चाहिये। जागो, ए भारत के नौनिहालो जागो ! देश की आवश्यकताओं को समझो। इतनी शक्ति प्राप्त करो कि चौबीसों घण्टे काम कर सको।

[नेपथ्य में]

भारत माता की जय ! भारत माता की जय !!
भारत माता की जय !!!

[पटाक्षेप]

भारतीय ग्रन्थमाला

१—भारतीय शासन (आठवाँ संस्करण) ... ... १।)
२—भारतीय विद्यार्थी विनोद (तीसरा संस्करण) ... ॥=)
३—हमारी राष्ट्रीय समस्याएँ (तीसरा संस्करण) ॥।=)
४—हिन्दी में अर्थशास्त्र और राजनीति साहित्य ... ॥।)
५—भारतीय सहकारिता आन्दोलन ... ... २)
६—भारतीय जागृति (तीसरा संस्करण) ... ... १।)
७—विश्व वेदना ... ... ॥।=)
८—भारतीय चिन्तन ... ... ॥।=)
९—भारतीय राजस्व (दूसरा संस्करण) ... ... ॥।=)
१०—निर्वाचन पद्धति (दूसरा संस्करण) ... ... ॥—)
११—नागरिक कहानियाँ ... ... ॥=)
१२—राजनीति शब्दावली (दूसरा संस्करण)... ... ॥।)
१३—नागरिक शिक्षा (दूसरा संस्करण) ... ... ॥=)
१४—ब्रिटिश साम्राज्य शासन ... ... ॥।=)
१५—श्रद्धाञ्जलि ... ... ॥।=)
१६—भारतीय नागरिक Indian Citizens... ... ॥)
१७—भव्य विभूतियाँ ... ... ॥=)
१८—अर्थशास्त्र शब्दावली Economic Terms ... ॥।)
१९—कौटिल्य के आर्थिक विचार ... ... ॥।=)
२०—अपराध चिकित्सा (जेल, कालापानी, फांसी !) ... १॥)
२१—पूर्व की राष्ट्रीय जागृति ... ... १॥)
२२—भारतीय अर्थशास्त्र (दूसरा संस्करण) ... ... २॥)
२३—गांव की बात ... ... ।)

भारतीय राज्य शासन ॥।); नागरिक ज्ञान १); राजस्व १); धन की उत्पत्ति १।); नागरिक शास्त्र १॥।); सरल भारतीय शासन, दूसरा संस्करण ॥); ऐलिमेंटरी सिविक्स, दूसरा संस्करण ॥।)

भगवानदास केला; भारतीय ग्रन्थमाला; बृन्दाबन